श्रीमद् भगवद्गीता
(किशोरों और आरम्भिक अध्येताओं के लिए)

विषय-प्रवेश

Font used: Shusha (attached herewith)

जय : **दादी माँ, मुझे भगवद्गीता की शिक्षा को समझने में बहुत कठिनाई आ रही है। क्या आप इसमें मेरी सहायता करेंगी?**

दादी माँ : जरूर-जरूर जय। मुझे बहुत खुशी होगी। तुम्हें जानना चाहिए कि यह पावन ग्रन्थ हमें सिखाता है कि हम संसार में सुख से कैसे रहें। यह हिन्दू धर्म (जिसे सनातन धर्म भी कहा जाता है) का अति प्राचीन पावन ग्रन्थ है। किन्तु इसकी शिक्षा को किसी भी धर्म के अनुयायी समझ सकते हैं और उस पर आचरण कर सकते हैं। गीता में **18** अध्याय हैं और कुल मिलाकर केवल **700** श्लोक हैं। इसकी शिक्षाओं में से प्रतिदिन कुछ का ही अभ्यास करना किसी के लिए भी सहायक हो सकता है। तो प्रस्तुत है गीता की भूमिका –

प्राचीन काल में एक राज के दो बेटे थे – धृतराष्ट्र और पाण्डु। धृतराष्ट्र जन्म से ही अन्धा था। अत: पाण्डु को उत्तराधिकार में राज्य मिला। पाण्डु के पाँच पुत्र थे, वे पाण्डव कहलाते थे। धृतराष्ट्र के सौ बेटे थे, उन्हें कौरव कहा जाता था। पाण्डवों में युधिष्ठिर सबसे बड़े थे और कौरवों में दुर्योधन।

पाण्डु के मरने के बाद उनका सबसे बड़ा बेटा युधिष्ठिर विधिवत् राजा बना। दुर्योधन को इससे बहुत ईर्ष्या हुई। वह भी राज्य चाहता था। अत: राज्य को दो भागों में बाँट दिया गया, पाण्डवों और कौरवों के बीच। किन्तु दुर्योधन को अपना भाग लेकर ही सन्तोष न हुआ। उसे तो सारा राज्य चाहिए था। उसने पाण्डवों को मारने और उनका राज्य हथियाने के लिए अनेक दुष्टता भरे षड्यन्त्र किये। अन्त में किसी तरह उसने पाण्डवों का सारा राज्य हड़प ही लिया और बिना युद्ध के उसे पाण्डवों को लौटाने से साफ मना कर दिया। भगवान् श्रीकृष्ण तथा अन्य लोगों द्वारा शान्ति-वार्ता हेतु किये गये सभी प्रयत्न निष्फल हुए। इसलिए महाभारत के युद्ध को टालना असम्भव हो गया।

पाण्डव लड़ना नहीं चाहते थे, किन्तु उनके सामने दो ही रास्ते थे। या तो वे अपने अधिकारों के लिए लड़ें (जो उनका कर्त्तव्य भी था) या लड़ाई से भागकर शान्ति और अहिंसा के नाम में हार स्वीकार करें। लड़ाई के मैदान में पाँचों पाण्डवों में से एक अर्जुन के सामने लड़ाई में इन मार्गों में से कौन सा चुने, यह समस्या उठी।

अर्जुन को दो बातों में से एक को चुनना था। या तो वह युद्ध करे और अपने परम पूज्य गुरु की, परम प्रिय मित्रों की, निकट सम्बन्धियों और निर्दोष सैनिकों की हत्या करे, जोकि दूसरे पक्ष की ओर से लड़ रहे थे, या शान्तिप्रिय और अहिंसक होकर युद्ध से भाग खड़ा हो। गीता के सम्पूर्ण अठारह अध्याय संशयग्रस्त अर्जुन और उसके सर्वश्रेष्ठ मित्र, हितैषी अभिभावक और ममेरे भाई भगवान् कृष्ण, जो ईश्वर के अवतार थे, के बीच लगभग पांच हजार एक सौ वर्ष पहले नई दिल्ली के पास कुरुक्षेत्र के लड़ाई के मैदान में हुआ संवाद है। यह संवाद अन्धे धृतराष्ट्र को उसके सारथी संजय ने सुनाया था। महाकाव्य महाभारत में यह संवाद अंकित है।

मनुष्य का हो या उसके अलावा अन्य जीवों का – सबका जीवन पवित्र है, पावन है। अहिंसा हिन्दू धर्म का एक मूल सिद्धान्त है – परम धर्म है। इसलिए अगर तुम महाभारत के युद्ध की पृष्ठभूमि को ध्यान में नहीं रखते, तो तुम भगवान् कृष्ण द्वारा अर्जुन को **'उठो और लड़ो'** की सलाह और अहिंसा के सिद्धान्त के बारे में संशयग्रस्त हो सकते हो।

याद रखो कि परमप्रभु श्रीकृष्ण और उनके भक्त-मित्र अर्जुन के बीच में यह आध्यात्मिक संवाद किसी मन्दिर या एकान्त वन में अथवा किसी पर्वत शिखा पर नहीं होता, वरन् होता है युद्ध की पूर्व संध्या पर लड़ाई के मैदान में।

जय : **बहुत ही दिलचस्प कहानी है यह तो, दादी माँ। क्या आप मुझे और बतायेंगी?**

दादी माँ : अगर तुम वहाँ आओगे जय, जहाँ मैं रोज शाम को बैठती हूँ, तो मैं रोज तुम्हें एक-एक अध्याय करके पूरी बात बताऊँगी। हाँ, इस बात का पूरा ध्यान रखना कि तुम्हारा पढ़ाई का काम अधूरा न रहे और तुम्हारे पास सुनने के लिए काफी समय हो। अगर तुम्हें यह मंजूर है, तो कल से ही शुरू करें।

जय : **धन्यवाद, दादी माँ। मैं और सुनने के लिए जरूर वहाँ आऊँगा।**

अध्याय एक

अर्जुन का विषाद और मोह

जय : दादी माँ, सबसे पहले तो मैं यह जानना चाहूँगा कि युद्ध क्षेत्र में भगवान् कृष्ण और अर्जुन के बीच यह संवाद कैसे हुआ?

दादी माँ : यह घटना इस प्रकार घटी। महाभारत का युद्ध शुरू होने वाला ही था - श्रीकृष्ण और दूसरे लोगों के युद्ध को टालने के लिए किये गये सभी शान्तिवार्ताएँ और प्रयत्न निष्फल सिद्ध हुए थे। जब युद्धक्षेत्र में सैनिक जमा हो गये थे, तो अर्जुन ने भगवान् कृष्ण से अपना रथ दोनों सेनाओं के बीच ले जाने की प्रार्थना की ताकि वह उन लोगों को देख सके, जो युद्ध के लिए तैयार थे। युद्धक्षेत्र में अपने सभी सम्बन्धियों, मित्रों और सैनिकों को देखकर और उनके मरने के भय से अर्जुन के हृदय में 'करुणा' जाग उठी।

जय : दादी माँ, करुणा का क्या अर्थ है?

दादी माँ : करुणा का अर्थ दया नहीं है, जय। दया का अर्थ होगा, दूसरों को अपने से नीचा समझना - बेचारे निस्सहाय प्राणी मानना। अर्जुन तो उनकी पीड़ा और अपनी ही तरह उनकी दुर्भाग्य भरी स्थिति अनुभव कर रहा था। अर्जुन एक महान योद्धा था, जो बहुत से युद्ध लड़ चुका था और इस युद्ध के लिए भी तैयार था। किन्तु अचानक मन में जगी करुणा के कारण उसकी युद्ध करने की इच्छा जाती रही। वह युद्ध के दोषों के बारे में बोलने लगा और दुःखी मन से रथ के पीछे के भाग में बैठ गया। उसे युद्ध का कोई लाभ दिखाई न दिया। उसे पता न था कि वह क्या करे।

जय : मैं उसे दोष नहीं देता। मैं भी दूसरों से लड़ना नहीं चाहूँगा। लोग लड़ते क्यों हैं, दादी माँ? युद्ध क्यों होते हैं?

दादी माँ : जय, युद्ध केवल राष्ट्रों के बीच में ही नहीं होते, झगड़े तो दो व्यक्तियों के बीच में भी होते हैं - भाइयों और बहनों के बीच में, पति - पत्नी के बीच में, मित्रों और पड़ौसियों के बीच में। इसका मूल कारण है कि लोग अपने स्वार्थ भरे उद्देश्यों और इच्छाओं का त्याग नहीं कर सकते। अधिकांश युद्ध सत्ता और अधिकार के लिए लड़े जाते हैं। अधिकांश समस्याएँ शान्ति से सुलझाई जा सकती हैं, यदि लोग समस्या को दोनों पक्षों से देख सकें और कोई समझौता कर सकें। युद्ध अन्तिम विकल्प होना चाहिये, आखिरी चारा। हमारे धर्मग्रन्थों का कहना है - दूसरों के प्रति हिंसा नहीं करनी चाहिये। अनुचित हत्या सब स्थितियों में दण्डनीय है। भगवान् कृष्ण अर्जुन को अपने अधिकारों के लिए युद्ध करने को प्रेरित करते हैं, अनावश्यक हत्या करने के लिए नहीं। घोषित युद्ध में लड़ना अर्जुन के लिए क्षत्रिय होने के कारण कर्त्तव्य था, पृथ्वी पर शान्ति, कानून और व्यवस्था स्थापित करने के लिए।

हम सब प्राणियों के भीतर भी युद्ध चलते ही रहते हैं। हमारी नकारात्मक और सकारात्मक - बुरी और अच्छी शक्तियाँ सदा लड़ती रहती हैं। हमारी नकारात्मक शक्तियों के ही प्रतिनिधि हैं कौरव और पाण्डव सकारात्मक शक्तियों के प्रतिनिधि हैं। गीता में शिक्षा को चित्रित करने के लिए कहानियाँ नहीं हैं, इसलिए मैं तुम्हारी सहायता के लिए दूसरे स्रोतों से कुछ कहानियाँ कहूँगी।

तो प्रस्तुत है नकारात्मक और सकारात्मक विचारों की आपस में लड़ाई की एक कथा, जो महाभारत में स्वयं भगवान् कृष्ण ने अर्जुन को सुनाई थी।

1. सत्यवादी

एक बार कहीं एक महान् साधु रहता था। वह सदा सत्य बोलने के लिए प्रसिद्ध था। उसने सच बोलने की शपथ ली थी और वह 'सत्यमूर्ति' के नाम से प्रसिद्ध था। वह जो भी कहता था, लोग उसका विश्वास करते थे, क्योंकि जिस समाज में वह रहता और तपस्या करता था, उसमें उसने महान् कीर्ति अर्जित कर ली थी।

एक दिन शाम के वक्त एक डाकू किसी व्यापारी को लूटकर उसकी हत्या करने के लिए उसका पीछा कर रहा था। व्यापारी अपनी जान बचाने के लिए भाग रहा था। डाकू से बचने के लिए वह व्यापारी गाँव से बाहर उस वन की ओर भागा, जहाँ साधु रहता था।

व्यापारी ने अपने आपको बहुत सुरक्षित महसूस किया क्योंकि जिस जंगल में वह छिपा था, उसका पता लगाना डाकू के लिए असम्भव था। किन्तु साधु ने उस दिशा को देख लिया था, जिस ओर व्यापारी भागा था।

डाकू साधु की कुटिया के पास आया। उसने साधु को प्रणाम किया। डाकू को पता था कि साधु सच ही बोलेगा और उसका विश्वास किया जा सकता था। इसलिए उसने साधु से पूछा, "क्या आपने किसी आदमी को भागते हुए देखा है?" साधु जानता था कि डाकू अवश्य ही किसी को लूटकर उसकी हत्या करने के लिए उसे ढूंढ़ रहा होगा। अब साधु के सामने बहुत बड़ी समस्या थी। यदि वह सच बोलता है, तो निश्चित ही व्यापारी मारा जायेगा। और यदि वह झूठ बोलता है, तो वह झूठ बोलने के पाप का भागी होगा और अपनी कीर्ति गँवा बैठेगा। अहिंसा और सत्य सभी धर्मों की दो महत्त्वपूर्ण शिक्षाएँ हैं, जिनका हमें पालन करना चाहिये। अब यदि इन दोनों में से एक को चुनना पड़े, तो किसे चुनें? यह बहुत कठिन चुनाव है।

अपने सत्य बोलने के स्वभाव के कारण साधु ने कहा, “हाँ, मैंने किसी को उस ओर भागते देखा है।” इस प्रकार डाकू व्यापारी को ढूँढ़कर उसे मारने में सफल हुआ। सच को छिपाकर साधु एक व्यक्ति का जीवन बचा सकता था। किन्तु उसने ध्यान से नहीं सोचा और गलत निर्णय चुना।

भगवान् कृष्ण का अर्जुन को यह कहानी सुनाने का उद्देश्य अर्जुन को यह शिक्षा देना था कि कभी-कभी हमें एक शिला और कठोर स्थान में से किसी एक को चुनना होता है। भगवान् कृष्ण ने अर्जुन को बताया कि एक व्यक्ति की हत्या करने के पाप में डाकू के साथ साधु भी भागी है। इसलिए जब दो उदात्त आदर्शों (सिद्धान्तों) में टकराव होता है तो हमें देखना होगा कि कौन सा सिद्धान्त ऊँचा है। अहिंसा सबसे ऊँची प्राथमिकता है, इसलिए साधु को एक व्यक्ति के प्राण बचाने के लिए इस स्थिति में झूठ बोलना चाहिये था। यदि ऐसा करने से किसी भी प्रकार एक व्यक्ति को हानि पहुँचती है, तो सच बोलना जरूरी नहीं। कभी-कभी जीवन की वास्तविक स्थितियों में धर्म का पालन आसान नहीं है और कभी-कभी इस बात का निर्णय करना भी बहुत कठिन है कि अधर्म क्या है। ऐसी स्थिति में विद्वानों की सलाह लेनी चाहिये।

भगवान् कृष्ण ने एक और उदाहरण भी दिया है कि एक डाकू किसी गाँव को लूटने और ग्रामवासियों की हत्या करने गया था। ऐसी अवस्था में डाकू की हत्या करना अहिंसात्मक कर्म होगा, क्योंकि एक की हत्या करने से बहुत से व्यक्तियों के प्राण बचेंगे। स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण को बहुत बार महाभारत के युद्ध को जीतने के लिए और सब पापियों को ख़त्म करने के लिए ऐसे निर्णय लेने पड़े थे।

जय, याद रखो, झूठ मत बोलो, किसी की हत्या न करो, न किसी को हानि पहुँचाओ। किन्तु सबसे बड़ी प्राथमिकता है किसी की जान बचाना।

पहले अध्याय का सारांश - अर्जुन ने अपने मित्र भगवान् कृष्ण से अपना रथ दोनों सेनाओं के बीच में ले जाने को कहा, ताकि वह कौरवों और पाण्डवों की सेना को देख सके। विरोधी पक्ष में अपने मित्रों और सम्बन्धियों को देखकर, जिनकी हत्या युद्ध जीतने के लिए उसे करनी होगी, अर्जुन के हृदय में गहरी करुणा उपजी। उसका मन संशय से भर उठा। उसने युद्ध के दोषों का वर्णन किया और युद्ध करने से मना कर दिया।

अध्याय दो

ब्रह्मज्ञान

जय : दादी माँ, अगर अर्जुन के हृदय में उन सबके लिए, जिन्हें उसे युद्ध में मारना था, इतनी करुणा भरी थी, तो वह कैसे रणक्षेत्र में जाकर युद्ध कर सकता था?

दादी माँ : बिल्कुल यही तो अर्जुन ने भगवान् कृष्ण से पूछा था। उसने कहा, “मैं युद्ध में अपने बाबा, गुरु और अन्य सब सम्बन्धियों पर कैसे बाण चला सकता हूँ? (गीता **2.04**)

अर्जुन की बात ठीक थी। वैदिक संस्कृति में गुरु और वृद्धजन आदर के पात्र हैं। किन्तु धर्मग्रन्थों में यह भी कहा गया है कि कोई भी व्यक्ति, जो गलत या गैर कानूनी काम तुम्हारे या किसी और के साथ करता है अथवा ऐसे कार्यों का समर्थन करता है, तो वह सम्मान का पात्र नहीं है। उसे दण्ड दिया जाना चाहिये।

अर्जुन अपने कर्त्तव्य के प्रति संशयग्रस्त था। उसने भगवान् कृष्ण से मार्गदर्शन की प्रार्थना की। भगवान् कृष्ण ने तब उसे आत्मा और भौतिक शरीर के सही ज्ञान की शिक्षा दी।

जय : आत्मा क्या है, दादी माँ, उसका स्वरूप क्या है?

दादी माँ : आत्मा वह तत्त्व है, जिससे हमें अपने होने का भाव होता है। शरीर की तरह न पैदा होती है, न कभी मरती है। हमारा शरीर ही पैदा होता है और मरता है, आत्मा नहीं। आत्मा अमर है, शाश्वत - सदा रहने वाली। आत्मा शरीर को सहायता देती है, शरीर का आधार है वह। आत्मा के बिना शरीर मर जाता है। आत्मा हमारे शरीर, मस्तिष्क और इन्द्रियों को शक्ति देती है, वैसे ही जैसे हवा आग को। आत्मा को शस्त्र नहीं काट सकते, आग नहीं जला सकती, हवा नहीं सुखा सकती, न ही जल गला सकता। इसलिए हमें शरीर के मरने पर शोक नहीं करना चाहिये क्योंकि शरीर के भीतर की आत्मा कभी नहीं मरती है। (गीता **2.23-24**)

जय : दादी माँ, आत्मा और शरीर में क्या अन्तर है?

दादी माँ : सब शरीरों में एक वही आत्मा निवास करती है। समय के साथ हमारा शरीर बदलता है। हमारा बुढ़ापे का शरीर बचपन के शरीर से अलग होता है। किन्तु आत्मा नहीं बदलती है। आत्मा बचपन के शरीर को ग्रहण करती है, जवानी के शरीर को और बुढ़ापे के शरीर को ग्रहण करती है, जब तक जीवन है और मृत्यु के बाद दूसरा शरीर ग्रहण कर लेती है। (गीता **2.13**) आत्मा सार्वभौमिक और सार्वकालिक है अर्थात् हर जगह और हर काल में विद्यमान है। व्यक्ति के शरीर में निवास करने वाली आत्मा को जीवात्मा या जीव कहा जाता है। यदि हम आत्मा की तुलना वन से करें, तो व्यक्तिगत आत्मा (या जीव) की तुलना वन के पेड़ से की जा सकती है।

शरीर को आत्मा का वस्त्र कहा गया है। जैसे हम पुराने, फटे हुए वस्त्र को त्यागकर नये वस्त्र को धारण करते हैं, वैसे ही आत्मा मृत्यु के बाद पुराने शरीर को छोड़कर नया शरीर ले लेती है। इस प्रकार मृत्यु आत्मा के वस्त्र बदलने जैसा है। (गीता **2.22**) सभी जीव जन्म और मृत्यु के बीच में दिखाई देते हैं। वे

जन्म के पहले और मृत्यु के बाद नहीं दिखते, उस समय वे अपने अदृश्य रूप में रहते हैं। (गीता 2.28) इसलिए हमें शरीर के मरने का शोक नहीं करना चाहिये। हम शरीर नहीं हैं। हम सशरीरी आत्मा हैं यानि शरीर को धारण किये हुए आत्मा। मृत्यु का अर्थ केवल यही है कि हमारी आत्मा एक शरीर से दूसरे शरीर में चली जाती है।

जय : **तब अर्जुन युद्धक्षेत्र में हुई प्रियजनों की मृत्यु पर शोक क्यों कर रहा था? वह लड़ना क्यों नहीं चाहता था?**

दादी माँ : अर्जुन एक महान् योद्धा था, जय, पर वह युद्ध की विभीषिका से भागकर एक सन्यासी का सहज जीवन बिताना चाहता था - घुमन्ते साधु का। भगवान् कृष्ण ने अर्जुन को कर्म योग के सुन्दर विज्ञान अथवा शान्तिपूर्ण सार्थक जीवन का शास्त्र देकर हमें जीवन-संग्राम का सामना करना सिखाया है। गीता के तीसरे अध्याय में हमें इसके बारे में और अधिक बताया गया है। अर्जुन को युद्ध के परिणामों की चिन्ता थी। किन्तु भगवान् कृष्ण हमें परिणामों या फलों की - जैसे लाभ-हानि, जय-पराजय, सफलता-असफलता की - अधिक चिन्ता किये बिना अपने कर्त्तव्य करने को कहते हैं। अब यदि तुम हर समय अपनी पढ़ाई के परिणामों की ही चिन्ता करते रहोगे, तो तुम कभी भी अपना मन, अपना दिमाग उसमें नहीं लगा सकोगे। हमेशा असफलता का भय सताता रहेगा तुम्हें।

जय : **पर दादी माँ, यदि अर्जुन विजय या कुछ पाने के लिए नहीं लड़ रहा था, तो वह पूरे मन से युद्ध कैसे कर सकता था?**

दादी माँ : अवश्य ही अर्जुन को विजय के लिए लड़ना था, पर उसे युद्ध करते समय परिणामों की चिन्ता करके अपनी इच्छा-शक्ति को कमजोर नहीं करना चाहिये था। उसे युद्ध के समय हर पल अपना सारा ध्यान, अपनी सारी शक्ति उसी में लगानी चाहिये थी। वही शक्ति सर्वश्रेष्ठ परिणाम को देने वाली है।

भगवान् कृष्ण हमें बताते हैं कि हमारा अपने कर्मों पर तो पूरा अधिकार है, किन्तु अपने कर्मों के फलों पर नहीं। (गीता 2.47) हरि भल्ला का कहना है : एक किसान किस प्रकार अपनी भूमि में क्या करता है, यह तो पूरा-पूरा उसके वश में है, पर उसमें उपजी फसल पर उसका कोई अधिकार नहीं। किन्तु बिना भूमि पर पूरी शक्ति और साधन के साथ काम किये बिना वह किसी भी फसल की आशा नहीं कर सकता।

हमें वर्तमान में - इस समय में - पूरी शक्ति से कर्म करना चाहिये, भविष्य की चिन्ता भविष्य को ही करने दें।

जय : **क्या आप मुझे सफलता के रहस्यों को और विस्तार से बतायेंगी, जैसे कि अर्जुन को भगवान् कृष्ण ने बताया था।**

दादी माँ : हमें अपने काम या पढ़ाई में पूरी तरह इस प्रकार खो जाना चाहिये, जिससे और किसी भी बात का - यहाँ तक कि काम के फल का भी - ध्यान न रहे। अपने कर्म के श्रेष्ठतम परिणामों की प्राप्ति के लिए हमें पूरे अविभक्त मन से अपने काम पर ही केन्द्रित होना चाहिये।

कर्म को परिणामों की चिन्ता किये बिना पूरी निष्ठा के साथ किया जाना चाहिये। यदि हम अपना पूरा ध्यान और पूरी शक्ति कर्म में ही लगा सकें अपनी शक्ति को परिणामों के चिन्तन में न बिखरने दें, तो हमारे कर्म का परिणाम महत्तर होगा। परिणाम, कर्म में लगाई गई शक्ति पर निर्भर करेगा। कर्म करते समय हमें फल की चिन्ता न करने के लिए कहा गया है। इसका अर्थ यह नहीं कि हम परिणामों की ओर बिल्कुल ही ध्यान न दें। किन्तु हमें हर समय लाभकारी (सकारात्मक) फलों की ही आशा नहीं करनी चाहिये।

सार्थक जीवन जीने का रहस्य है पूरी तरह सक्रिय होना और शक्ति भर काम करना - बिना अपने स्वार्थपूर्ण उद्देश्यों और परिणामों का चिन्तन किये। आत्मज्ञानी पुरुष सब की भलाई के लिए काम करता है।

जय : **आत्मज्ञानी व्यक्ति के क्या लक्षण हैं, दादी माँ?**

दादी माँ : आत्मज्ञानी (स्थितप्रज्ञ) एक पूर्ण व्यक्ति है, जय। भगवान् कृष्ण कहते हैं कि पूर्ण व्यक्ति का मन कठिनाइयों में विचलित नहीं होता है। वह सुख के पीछे नहीं भागता है। भय, इच्छा (काम), लोभ और मोह से मुक्त होता है और मन व इन्द्रियों पर अंकुश रखता है। (गीता 2.56) आत्मज्ञानी स्थितप्रज्ञ व्यक्ति को क्रोध नहीं आता है, वह शान्त और प्रसन्न रहता है।

जय : **दादी माँ, हम क्रुद्ध होने से कैसे बच सकते हैं?**

दादी माँ : हमें क्रोध आता है, जब हमारी इच्छा पूरी नहीं होती। (गीता 2.62) अत: क्रोध को काबू में रखने का श्रेष्ठतम उपाय है - इच्छाओं का दास न होना। हमें अपनी इच्छाओं को सीमित करने की ज़रूरत है। इच्छाएँ हमारे मन में पैदा होती हैं, इसलिए हमें अपने मन को काबू में रखना चाहिये। यदि हम मन को काबू में नहीं रखते हैं, तो हम पाल विहीन जहाज़ की तरह भटक जायेंगे। सुख की कामना हमें पाप की अँधेरी गली में ले जाती है, मुसीबतों में डालती है और हमारी प्रगति को रोकती है। (गीता 2.67) एक विद्यार्थी होने के नाते तुम्हें अपने लिए सुख से ऊँचा ध्येय निश्चित करना चाहिये। पूरे प्रयत्न से पढ़ाई में ध्यान केन्द्रित करना चाहिये।

अर्जुन इस प्रकार के ध्यान केन्द्रित करने वाले का बहुत अच्छा उदाहरण है। उसके विषय में एक कथा सुनो।

2 . दीक्षान्त परीक्षा

गुरु द्रोण कौरवों और पाण्डवों दोनों को अस्त्र-शस्त्र विद्या की शिक्षा देने वाले गुरु थे। उनकी सैनिक शिक्षा की समाप्ति के बाद अंतिम परीक्षा का समय आया। द्रोण ने समीप के एक पेड़ की शाखा पर लकड़ी का एक बाज़ रखा। कोई नहीं जानता था कि वह केवल एक खिलौना था। वह असली बाज़ जैसा लगता था। दीक्षान्त परीक्षा उत्तीर्ण करने के लिए सभी छात्रों को एक बाण से बाज़ का सिर काटना था।

गुरु द्रोण ने सबसे पहले पाण्डवों में सबसे बड़े युधिष्ठिर को बुलाकर कहा, "तैयार हो जाओ, बाज़ को देखो और मुझे बताओ कि तुम क्या देख रहे हो?" युधिष्ठिर ने उत्तर दिया, "मैं आकाश को देख रहा हूँ, बादलों को, पेड़ के तने को, शाखाओं को वहाँ बैठे हुए बाज़ को देख रहा हूँ।"

गुरु द्रोण इस उत्तर से बहुत प्रसन्न नहीं हुए। उन्होंने एक-एक करके सभी छात्रों से वही प्रश्न पूछा। उनमें से प्रत्येक ने वैसा ही उत्तर दिया। तब परीक्षा के लिए अर्जुन की बारी आई।

द्रोण ने अर्जुन से कहा, "तैयार हो जाओ। बाज़ को देखो और मुझे बताओ तुम क्या देख रहे हो?"

अर्जुन ने उत्तर दिया, "मैं केवल बाज़ को देख रहा हूँ, और कुछ भी नहीं।"

द्रोण ने तब दूसरा प्रश्न पूछा, "यदि तुम बाज़ को देख रहे हो, तो मुझे बताओ उसका शरीर कितना मज़बूत है और उसके पंखों का रंग क्या है?"

अर्जुन ने उत्तर दिया, "मैं केवल उसके सिर को देख रहा हूँ, सारे शरीर को नहीं।"

गुरु द्रोण अर्जुन के उत्तर से बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने उसे परीक्षा पूर्ण करने की आज्ञा दी। अर्जुन ने सहज ही एक ही बाण से बाज़ का सिर काट गिराया, क्योंकि वह अपने लक्ष्य पर एकाग्रचित्त होकर ध्यान केन्द्रित कर रहा था। परीक्षा में उसे पूरी सफलता मिली।

अर्जुन अपने समय का न केवल सबसे बड़ा योद्धा था, वरन् वह एक करुणा भरा कर्मयोगी भी था। भगवान् कृष्ण ने गीता का ज्ञान देने के लिए अर्जुन को माध्यम चुना।

हम सभी को अर्जुन के पदचिन्हों पर चलना चाहिये। गीता को पढ़ो, बेटे, और अर्जुन की तरह बनो। जो भी काम तुम करो, पूरे मन से एकाग्रचित्त होकर करो। गीता के कर्म योग का यही मूलमंत्र है और तुम्हारे हर काम में सफलता का यही रहस्य है।

अध्याय **2** का सार : भगवान् कृष्ण ने अर्जुन के माध्यम से हमें आत्मा और शरीर के अन्तर की शिक्षा दी। हम सशरीरी आत्मा हैं। आत्मा अजन्मा है और अविनाशी है। सब शरीरों में एक वही आत्मा रहती है - मानवीय और अमानवीयों में। इस प्रकार हम सब एक दूसरे से जुड़े हैं। सफलता या असफलता की चिन्ता किये बिना हमें अपनी योग्यता के अनुसार अपना कर्त्तव्य पूरा करना चाहिये। हमें अपनी असफलताओं से शिक्षा लेनी चाहिये और असफलताओं से हार न मानकर आगे बढ़ना चाहिये। पूर्ण (स्थितप्रज्ञ) व्यक्ति बनने के लिए हमें अपनी कामनाओं पर काबू पाना ज़रूरी है।

अध्याय तीन

कर्मयोग - कर्त्तव्यमार्ग

जय : **दादी माँ, हमें अपनी इच्छाओं पर काबू क्यों करना चाहिये?**

दादी माँ : जब इन्द्रियों के सुख के लिए ग़लत व्यवहार चुनते हो, तो तुम उसके परिणामों को भी चुनते हो इसीलिए कोई भी काम सबके भले के लिए किया जाना चाहिये, अपनी इच्छाओं को शान्त करने के लिए या व्यक्तिगत लाभ के लिए नहीं। कर्मयोग के अभ्यास करने वाले को कर्मयोगी कहते हैं। कर्मयोगी सेवा का सही मार्ग चुनता है और अपने काम को पूजा का रूप दे देता है। कर्मयोग में कोई भी काम किसी दूसरे काम से अधिक या कम महत्त्वपूर्ण नहीं है।

जय : **चाचा हरि पिछले वर्ष भगवान् की खोज में घर छोड़कर एक आश्रम में चले गये। क्या भगवान् की खोज में हमें घर छोड़ना पड़ता है?**

दादी माँ : नहीं, बिल्कुल नहीं। गीता में भगवान् कृष्ण ने भगवान् की प्राप्ति के लिए हमें अलग-अलग रास्ते दिखलाये हैं। जो मार्ग तुम चुनते हो, वह तुम्हारी व्यक्तिगत प्रकृति पर निर्भर करता है। साधारणत: दुनिया में दो तरह के लोग हैं। अन्तर्मुखी - अध्ययनशील और बहिर्मुखी या कर्मशील। चाचा हरि जैसे अन्तर्मुखी लोगों के लिए आध्यात्मिक ज्ञान का मार्ग सर्वश्रेष्ठ है। इस मार्ग का अनुसरण करने वाले किसी आध्यात्मिक गुरु की शरण में जाते हैं, जिनकी सही देख-रेख में वे वैदिक ग्रन्थों का अध्ययन करते हैं। इस मार्ग में हम इस ज्ञान की प्राप्ति करते हैं कि हम कौन हैं और हम कैसे सुख-शान्ति का जीवन बिता सकते हैं।

जय : **क्या भगवान् को समझने और पाने के लिए हमें सब शास्त्र-ग्रन्थों को पढ़ना ज़रूरी है?**

दादी माँ : हमारे धर्म में अनेक शास्त्र-ग्रन्थ हैं। चार वेद, एक सौ आठ उपनिषद, अठारह पुराण, रामायण, महाभारत, सूत्र-ग्रन्थ और अन्य बहुत से ग्रन्थ हैं। उन सब का अध्ययन करना एक कठिन काम है। किन्तु भगवान् कृष्ण ने हमारे जानने योग्य हर चीज़ को गीता में कह दिया है। गीता में आज के समय के लिए सभी वेदों और उपनिषदों का सार उपलब्ध है।

जय : **चाचा पुरी किसान हैं और उनकी कोई रुचि गीता पढ़ने में नहीं है। वे कहते हैं, गीता बहुत कठिन है और उनके जैसे साधारण लोगों के लिए नहीं है। तो उन्हें भगवान् की प्राप्ति कैसे हो सकती है?**

दादी माँ : चाचा पुरी को दूसरा - कर्मयोग का मार्ग ग्रहण करना चाहिये। गीता के इस अध्याय में उसका वर्णन है। यह कर्त्तव्य या निष्काम सेवा का मार्ग है। यह मार्ग अधिकांश लोगों के लिए अच्छा है, जो परिवार को पालने के लिए कठिन परिश्रम करते हैं और जिनके पास शास्त्रों को पढ़ने के लिए समय नहीं है, न उनमें रुचि। इस मार्ग पर चलने वालों के लिए घर छोड़कर किसी आश्रम में जाना ज़रूरी नहीं। वे अपने स्वार्थ भरे उद्देश्यों का त्याग कर के समाज के बृहत्तर भले के लिए काम करते हैं, केवल अपने लिए नहीं।

जय : **लेकिन अगर लोग अपने स्वार्थ भरे उद्देश्यों के लिए काम करेंगे, तो वे अधिक परिश्रम करेंगे, हैं न दादी माँ।**

दादी माँ : यह तो सच है कि यदि लोग अपने स्वार्थ भरे लाभ के लिए काम करेंगे, तो अधिक कमा सकेंगे, किन्तु ऐसा करने से उन्हें स्थायी सुख और शान्ति नहीं मिलेगी। केवल वे ही लोग जो सबके भले के लिए निःस्वार्थ भाव से अपना कर्त्तव्य पूरा करेंगे, सच्ची शान्ति और सन्तोष पायेंगे।

जय : **यदि लोग अपने व्यक्तिगत लाभ के लिए काम नहीं करेंगे, तो क्या वे तब भी शक्तिभर काम करेंगे और आलसी नहीं हो जायेंगे?**

दादी माँ : सच्चा कर्मयोगी व्यक्तिगत लाभ के विना भी परिश्रम करता है। केवल अज्ञानी ही मात्र व्यक्तिगत लाभ के लिए काम करते हैं। दुनिया सहज रूप से इसीलिए चल रही है कि लोग अपना कर्त्तव्य पूरा करते हैं। माता-पिता परिवार के पोषण के लिए परिश्रम करते हैं और बच्चे अपने हिस्से का काम। कोई भी हर समय निष्क्रिय या निठल्ला नहीं रह सकता। अधिकांश लोग किसी न किसी काम में लगे ही रहते हैं और यथाशक्ति काम करते हैं। सृष्टिकर्ता ब्रह्मा ने मानव को अपनी पहली शिक्षा दी, जब उन्होंने कहा, तुम सब प्रगति करो, फलो-फूलो - एक दूसरे की सहायता करते हुए और सही रूप में अपने कर्त्तव्य का पालन करते हुए।

जय : **यदि केवल अपने ही लाभ के लिए परिश्रम करें, तो क्या होगा?**

दादी माँ : तो वे पाप करेंगे। जय, दूसरों पर अपने काम के असर का ध्यान न करके स्वार्थवश काम करना गलत है। भगवान् कृष्ण ने ऐसे लोगों को चोर, बेकार और पापी कहा है

(गीता 3.12-13)। हमें कभी भी केवल अपने अपने लिए जीना और काम करना नहीं चाहिये। हमें एक-दूसरे की सहायता और सेवा करनी चाहिये।

जय : **जो व्यक्ति भगवान् ब्रह्मा की शिक्षा पर चलता है और समाज की भलाई के लिए काम करता है, उसे क्या लाभ होता है?**

दादी माँ : ऐसे व्यक्ति को इस जीवन में शान्ति और सफलता मिलती है, ईश्वर की प्राप्ति होती है और पृथ्वी पर फिर उसका जन्म नहीं होता।

अध्याय 3 में जिस निःस्वार्थ सेवा के बारे में विचार किया गया है, वह जीवन में कैसा अद्भुत काम करती है, इसको बताने में हमारे समय की एक सच्ची कहानी है।

3. सर अलैक्ज़ैण्डर फ्लैमिंग

एक दिन स्कॉटलैण्ड के एक ग़रीब किसान फ्लैमिंग ने, अपने परिवार को पालने के लिए अपना रोज़ का काम करते समय सहायता के लिए किसी की चीख़ सुनी। यह चीख़ पड़ौस के एक दलदल से आ रही थी। अपना काम छोड़कर वह किसान दलदल की ओर भागा। वहाँ कमर तक दलदल में डूबा एक आतंकित लड़का अपने को मुक्त करने के लिए चीख़ रहा था, हाथ पैर पीट रहा था। किसान फ्लैमिंग ने लड़के को उस भयानक और क्रमिक मौत से बचाया।

अगले दिन, उस स्कॉटलैण्डवासी के साधारण घर के सामने एक भव्य घोड़ागाड़ी रुकी। सुरुचिपूर्ण वस्त्र पहने एक एक कुलीन व्यक्ति उसमें से नीचे उतरा। अपना परिचय उसने उस बच्चे के पिता के रूप में दिया जिसे किसान फ्लैमिंग ने बचाया था।

उस कुलीन व्यक्ति ने कहा, “मैं आपको धन्यवाद देना चाहता हूँ और पुरस्कार रूप में कुछ देना भी। आपने मेरे बेटे की जान बचाई है।”

“मैंने जो किया है, उसके लिए मुझे कोई मूल्य नहीं चाहिये, मैं कुछ नहीं ले सकता।” स्कॉटलैण्ड के किसान ने उसका दान अस्वीकार करते हुए कहा।

उसी समय किसान का अपना बेटा उस झौंपड़े से बाहर निकलकर दरवाजे पर आया।

“यह आपका बेटा है?” कुलीन व्यक्ति ने पूछा।

“हाँ,” किसान ने गर्व से उत्तर दिया।

“तो मैं आपके साथ एक सौदा करूँगा। मुझे इस लड़के को उसी स्तर की शिक्षा दिलाने की अनुमति दें, जो मेरे अपने बेटे को मिलेगी। यदि इस लड़के में अपने पिता जैसा कोई भी गुण हुआ, तो वह निस्सन्देह बड़ा होकर ऐसा आदमी बनेगा, जिस पर हम दोनों गर्व कर सकें।”

और उसने वैसा ही किया। किसान फ्लैमिंग के बेटे ने सर्वोत्तम स्कूलों में शिक्षा पाई और समय आने पर लन्दन के सैण्ट मैरी हॉस्पिटल मैडिकल स्कूल से उपाधि पाई और विश्वभर में पैन्सलिन के आविष्कर्त्ता सर अलैक्ज़ैण्डर फ्लैमिंग के नाम से प्रसिद्ध हुए।

बरसों बाद उस कुलीन पिता का वही बेटा, जिसे दलदल से बचाया गया था, नमोनिया का शिकार हुआ और इस समय उसकी जान किसने बचाई? पैन्सलिन ने।

उस कुलीन व्यक्ति का नाम था - लॉर्ड रेण्डोल्फ चर्चिल।

उसके बेटे का नाम? सुप्रसिद्ध सर विन्स्टन चर्चि ल।

किसी ने कहा, जो चक्रवात जाता है, वही घूमकर आता है। कर्म का यह सार्वभौमिक नियम है। कारण और कार्य का सिद्धान्त। किसी दूसरे को सपने को पूरा करने में सहायता करो, परमात्मा की कृपा से तुम्हारा सपना भी पूरा होगा।

जय : **दादी माँ, कृपया मुझे सच्चे कर्मयोगियों के कुछ और उदाहरण दें।**

दादी माँ : तुमने रामायण की कहानी तो पढ़ी है। भगवान् राम के ससुर जनकपुर के राजा जनक थे। उन्होंने भगवान् को पाया - अपनी प्रजा की सेवा अपने बच्चों की तरह करके, नि:स्वार्थ भाव से और अपने कर्म के परिणामों के प्रति कोई मोह न रखकर। उन्होंने अपने कर्त्तव्य का पालन भगवान् की पूजा के रूप में किया। बिना स्वार्थ भरे उद्देश्य के कर्त्तव्य-भाव से किया गया कर्म भगवान् की पूजा होता है क्योंकि वह विश्व को चलाने में भगवान् की मदद करता है।

महात्मा गाँधी एक सच्चे कर्मयोगी थे, जिन्होंने बिना किसी व्यक्तिगत लाभ के लिए, समाज की भलाई मात्र के लिए सारे जीवन नि:स्वार्थ भाव से काम किया। उन्होंने विश्व के अन्य नेताओं के अनुकरण करने के लिए उदाहरण प्रस्तुत किया। इस प्रकार के नि:स्वार्थ व्यक्तियों के अनेक अन्य उदाहरण हैं।

जय : **क्या हमारे नेताओं को इसी तरह काम करना चाहिये?**

दादी माँ : हाँ, एक सच्चा कर्मयोगी अपने व्यक्तिगत उदाहरण से हमें दिखाता है कि किस प्रकार कर्मयोग के मार्ग पर चलकर नि:स्वार्थ जीवन जिया जाये और भगवान् की प्राप्ति की जाये।

जय : **यदि मैं कर्मयोगी बनना चाहूँ, तो मुझे क्या करना होगा?**

दादी माँ : कर्मयोग के लिए नि:स्वार्थ भाव से, अपने कर्म के फलों के प्रति मोह के बिना शक्तिभर अपने कर्त्तव्य का पालन ज़रूरी है। कर्मयोगी सफलता और विफलता दोनों में शान्त रहता है, उसकी किसी व्यक्ति, स्थान, पदार्थ अथवा काम के प्रति रुचि या अरुचि नहीं होती। मानवता की भलाई के लिए नि:स्वार्थ सेवा के रूप में किया गया कर्म किसी प्रकार का अच्छा या बुरा कर्म -बन्धन पैदा नहीं करता और भगवान् की दिशा में ले जाता है।

जय : **किसी व्यक्तिगत लाभ की इच्छा के बिना काम करना तो बहुत कठिन होगा। दादी माँ, हम ऐसा किस प्रकार कर सकते हैं?**

दादी माँ : जो लोग आध्यात्मिक दृष्टि से अज्ञानी हैं, वे अपने लिए ही काम करते हैं। अज्ञानी लोग अपने परिश्रम के परिणामों का सुख भोगने के लिए काम करते हैं और उसके प्रति उनका मोह हो जाता है क्योंकि वे समझते हैं कि वे ही कर्त्ता हैं। उन्हें इस बात का आभास नहीं होता कि सारा कर्म भगवान् के द्वारा हमें दी गई शक्ति के द्वारा किया जाता है। उस शक्ति से अपना कर्त्तव्य करके और बुद्धि से सही व गलत कार्म के बीच में चुनाव करके हम अपने कर्मों के प्रति उत्तरदायी हो जाते हैं। लोग गलत काम करते हैं क्योंकि वे अपनी बुद्धि का उपयोग नहीं करते और यह नहीं सोचते कि उनके कर्मों के परिणामों का दूसरों पर क्या प्रभाव पड़ रहा है।

ज्ञानी लोग अपनी कोई भी स्वार्थपूर्ण इच्छा न रखते हुए अपने सारे कर्मों को भगवान् को अर्पण कर देते हैं। अज्ञानी मात्र अपनी व्यक्तिगत इच्छाओं की पूर्ति के लिए। (गीता 3.25)

जय : **क्या मेरे जैसा साधारण व्यक्ति वह कर सकता है जो राजा जनक और महात्मा गाँधी जैसे महान् पुरुषों ने किया?**

दादी माँ : थोड़े से प्रयास से कोई भी व्यक्ति कर्मयोग के मार्ग का अनुसरण कर सकता है। जो भी काम तुम कर रहे हो, उसे समाज को अपनी भेंट समझो। यदि तुम एक विद्यार्थी हो, तो तुम्हारा कर्त्तव्य है स्कूल जाना, वहाँ से मिले काम को घर पर

करना, अपने माता-पिता, अध्यापक और अन्य गुरुजनों का सम्मान करना और अपने भाई-बहिनों, मित्रों तथा सहपाठियों की सहायता करना। विद्यार्थी काल में अपने को अच्छी शिक्षा पाकर अच्छे और लाभदायक नागरिक बनने की तैयारी करो।

जय : **शिक्षा समाप्त कर मुझे किस प्रकार का काम करना चाहिये, दादी माँ।**

दादी माँ : वही काम करो, जो तुम्हें पसन्द है और जिसे तुम अच्छी तरह कर सकते हो। वह तुम्हारी प्रकृति के अनुकूल होना चाहिये (गीता **3.35, 18.47**)। यदि तुम ऐसा काम चुनते हो, जिसमें तुम्हारा मन नहीं है या जिसके लिए तुम्हारे पास स्वाभाविक योग्यता नहीं है, तो तुम्हारी सफलता के अवसर सीमित होंगे। तुम्हें मालूम है कि कौन सा काम तुम सबसे अच्छी तरह कर सकते हो। वह होने का प्रयत्न करना, जो तुम नहीं हो असफलता और दु:ख का सबसे बड़ा कारण है।

जय : पर क्या मुझे अच्छा काम ढूँढ़ने का प्रयत्न नहीं करना चाहिये, जैसे इंजीनियरी, अध्यापन या सरकारी नौकरी?

दादी माँ : ऐसा कोई काम नहीं जो अच्छा हो या बुरा। समाज को चलाने के लिए सब प्रकार के कर्मियों की ज़रूरत है। कुछ काम करने से अच्छी आमदनी होती है। पर ऊँची आय वाले काम प्राय: अधिक कठिन और तनाव भरे होते हैं, यदि उन्हें करने की योग्यता तुममें नहीं है। यदि तुम्हारी योग्यता कम आय वाले काम के लिए है, तो सादा जीवन बिताओ और अनावश्यक चीज़ों से बचो। सादे जीवन का अर्थ है अत्यधिक भौतिक पदार्थों की इच्छा न करना। जीवन की परम आवश्यकताओं तक अपने को सीमित करो। अपनी इच्छाओं पर काबू पाओ। भगवान् बुद्ध ने कहा है : स्वार्थभरी इच्छा सभी पापों और दु:ख का कारण है।

जय : क्या स्वार्थपूर्ण इच्छाओं के कारण ही लोग बुरे काम करते हैं?

दादी माँ : हाँ, जय। हमारी सुख के लिए स्वार्थपूर्ण इच्छा ही सब पापों का कारण है। यदि हम अपनी इच्छाओं पर नियन्त्रण नहीं रखते, तो हमारी इच्छाएँ हम पर छा जायेंगी। हम अपनी ही इच्छाओं के शिकार हो जायेंगे। अपनी ज़रूरतों पर अंकुश रखो, क्योंकि जिसकी तुम्हें इच्छा है, वह इच्छा भी तुमको वश में करना चाहती है।

जय : तो क्या सभी इच्छाएँ बुरी हैं?

दादी माँ : नहीं, सब इच्छाएँ बुरी नहीं हैं। दूसरों की सेवा करने की इच्छा उदात्त इच्छा है। भोगों के आनन्द की इच्छा बुरी है क्योंकि वह पापपूर्ण और गैर कानूनी क्रियाओं की ओर ले जाती है और लोभ पैदा करती है। और यदि जो तुम चाहते हो, वह नहीं मिलता, तो तुम्हें क्रोध आता है। और जब लोगों को क्रोध आता है, तो वे दुष्कर्म करते हैं।

जय : भोगों के प्रति अपनी इच्छा पर हम कैसे काबू पा सकते हैं?

दादी माँ : एक रास्ता तो गीता में दिये ज्ञान का और चिन्तन-शक्ति का है। इससे पहले कि तुम अपनी इच्छा से (उत्पन्न) काम करो, उस काम के परिणामों को सोचो। इच्छाएँ मन में पैदा होती हैं और वहीं रहती हैं। बुद्धि और तर्कशक्ति के द्वारा तुम मन को वश में कर सकते हो।

जब तुम युवा होते हो, तुम्हारा मन गंदा हो जाता है, वैसे ही जैसे बरसात में तालाब का पानी कीचड़-भरा हो जाता है। यदि तुम्हारी बुद्धि तुम्हारे मन को काबू में नहीं रखती, तो तुम्हारा मन इन्द्रिय-सुख- भोगों की ओर भागता है। इसलिये धूम्रपान, शराब, नशीले पदार्थ और अन्य बुरी आदतों जैसे इन्द्रिय-सुख-भोगों से अपने मन को गंदा न होने के लिए अपने जीवन में ऊँचे आदर्श पैदा करो। बुरी आदतों से छुटकारा पाना कठिन है, इसलिये उनसे शुरू से ही बचो। अच्छी संगति में रहो, अच्छी किताबें पढ़ो, बुरे लोगों से बचो और अपने कामों के दीर्घ कालीन परिणाम के बारे में सोचो।

जय : चूँकि हमें अच्छे-बुरे का ज्ञान है, दादी माँ, तो हम बुरे गलत कामों के करने से सहज ही बच क्यों नहीं सकते?

दादी माँ : यदि हम अपने मन को काबू में नहीं रखते, तो हमारा मन हमारी इच्छा-शक्ति को कमज़ोर करने की कोशिश करेगा और हमें इन्द्रिय-सुख-भोगों की ओर ले जायेगा। हमें अपने मन पर निगरानी रखनी पड़ेगी और उसे सही मार्ग पर रखना पड़ेगा।

अध्याय **3** : सार - भगवान् कृष्ण जीवन में शान्ति और सुख पाने के लिए दो प्रमुख मार्गों का उल्लेख करते हैं। मार्ग का चयन व्यक्ति पर निर्भर करता है। अधिकांश लोगों के लिए कर्मयोग का मार्ग - नि:स्वार्थ सेवा का मार्ग अपनाना, उस पर चलना सहज है। ब्रह्मा की पहली शिक्षा है : एक-दूसरे की सहायता करो। यह समाज को सुचारु रूप से चलाती है और प्रगति की ओर ले जाती है। अपनी योग्यता के अनुसार हमें अपने कर्त्तव्य का पूरा पालन करना चाहिये। अपनी प्रकृति के अनुसार हमें अपना काम चुनना चाहिये कोई काम छोटा नहीं है। महत्त्वपूर्ण बात यह है कि तुम क्या करते हो, बल्कि यह है कि कैसे करते हो। अन्त में भगवान् कृष्ण हमें बताते हैं कि हमें भोगों की ओर ले जाने वाली अपनी इच्छा पर काबू पाना चाहिये। सुख-भोग की ओर ले जाने वाली अनियंत्रित इच्छाएँ हमें जीवन में असफलताओं और दु:खों की ओर ले जाती हैं। काम करने से पहले हमें उसके परिणामों के बारे में सोचना चाहिये। हर प्रकार से हमें कुसंगति से बचना चाहिये।

अध्याय चार

ज्ञान - सन्यास-मार्ग

जय : गीता में युद्धक्षेत्र में बोले हुए कथन का विवरण है। पर दादी माँ, गीता को लिखा किसने था?

दादी माँ : गीता की शिक्षाएँ बहुत पुरानी हैं। सबसे पहले वे सृष्टि के आरम्भ में भगवान् श्रीकृष्ण ने सूर्य-देवता को दी थीं। बाद में वे खो गईं। वर्तमान में जो गीता का स्वरूप है, वह लगभग 5,100 वर्ष पहले भगवान् कृष्ण द्वारा अर्जुन को दी गई शिक्षा है।

जय : तो क्या भगवान् कृष्ण ही गीता के लेखक हैं?

दादी माँ : हाँ, भगवान् कृष्ण गीता के लेखक हैं। लेकिन ऋषि व्यास ने इसे संकलित किया है। उन्होंने ही वेदों को संपादित किया है। ऋषि व्यास में भूतकाल और भविष्य की घटनाओं को पुनर्स्मरण करने की शक्ति थी। किन्तु वे एक साथ ही भगवान् कृष्ण द्वारा युद्धक्षेत्र में कही गई गीता का पुनर्स्मरण और लेखन नहीं कर सकते थे। उन्हें गीता को लिखने के लिए एक सहायक की ज़रूरत थी। ज्ञान/विवेक के देवता श्री गणेश जी ने लिखने के लिए उन्हें अपनी सेवा अर्पित की।

गीता को संस्कृत में पूरी व्याख्या के साथ महान् गुरु आदि शंकराचार्य ने 800 ईसा संवत् में अनूदित किया।

जय : श्रीकृष्ण इतने महत्त्वपूर्ण क्यों हैं?

दादी माँ : भगवान् कृष्ण परमात्मा के आठवें अवतार माने जाते हैं। परमात्मा इस धरती पर समय-समय पर विभिन्न रूपों में अवतरित होते हैं, जब अधर्म और पाप की शक्तियाँ विश्व-शान्ति को भंग करके विनाश का प्रयत्न करती हैं। भगवान् तब सब चीज़ों को ठीक करने के लिए अवतार लेते हैं। वे मानवजाति की मदद के लिए मसीहों और शिक्षकों को भी भेजते हैं। उनका जन्म और उनके कार्य दैवीय होते हैं और हर अवतार का एक उद्देश्य होता है। श्रीमद्भागवतम् (अथवा भागवत पुराण) में भगवान् के सभी दस अवतारों का विशद विवरण है। भगवान् बुद्ध, मूसा, ई सा, मुहम्मद और अन्य ऋषि-सन्त भी भगवान् के छोटे-मोटे अवतार समझे जाते हैं। कलियुग के नाम से जाने जाने वाले वर्त मान कलियुग के बाद सुदूर भविष्य में कल्कि का अवतार होगा।

जय : क्या भगवान् कृष्ण हमें वह सब देंगे, जो हम प्रार्थ ना या पूजा में चाहेंगे?

दादी माँ : हाँ, भगवान् कृष्ण वह देंगे, जो तुम चाहोगे (गीता 4.11), जैसे तुम्हारे अध्ययन में सफलता, यदि तुम निष्ठा और विश्वास के साथ उनकी पूजा करोगे। लोग भगवान् की पूजा और प्रार्थना भगवान् के किसी भी रूप और नाम का प्रयोग करते हुए कर सकते हैं। भगवान् के रूप को देवमूर्ति कहा गया है। लोग बिना देवमूर्ति की सहायता के भी भगवान् की पूजा कर सकते हैं।

जय : पर क्या हमें तब भी पढ़ाई करनी पड़ेगी, यदि हम परीक्षाओं में अच्छी सफलता चाहते हैं?

दादी माँ : हाँ, तुम्हें परिश्रम तो करना ही चाहिये। शक्तिभर काम करो और फिर प्रार्थना। भगवान् तुम्हारे लिए परिश्रम नहीं करेंगे। तुम्हें अपना काम स्वयं ही करना पड़ेगा। तुम्हारा काम स्वार्थपूर्ण इच्छाओं से मुक्त होना चाहिये और तुम्हें किसी को हानि नहीं पहुँचानी चाहिये। तब तुम्हें कर्म का कोई बन्धन नहीं होगा।

जय : कर्म क्या है, दादी माँ?

दादी माँ : कर्म संस्कृत का शब्द है। इसका अर्थ है काम या क्रिया। इसका अर्थ काम का फल या परिणाम भी है। हर काम का एक फल होता है, उसे कर्म कहते हैं। वह अच्छा भी हो सकता है और बुरा भी। यदि हम फलों को स्वयं भोगने के लिए ही अपना काम करते हैं, तो हम उन फलों के लिए उत्तरदायी हैं। यदि हमारे काम से किसी को हानि पहुँचती है, तो हम बुरे कर्म कमाते हैं। उसे पाप कहा जाता है। उसके लिए हमें नरक का दु:ख भोगना पड़ेगा। यदि हम दूसरों का भला करते हैं, तो हम अच्छे कर्म कमाते हैं और उसका पुरस्कार हमें स्वर्ग की यात्रा के रूप में मिलता है।

हमारे अपने कर्म ही हमारे कामों के परिणामों के कारण सुख या दु:ख भोगने के लिए हमारे पुनर्जन्म के लिए उत्तरदायी हैं। कर्म अच्छे या बुरे कामों के रूप में बैंक में धन जमा करने की तरह है। जब हमारे कर्म पूरे समाप्त हो जाते हैं, तो हम पुनर्जन्म नहीं लेते। जन्म-मरण के चक्र से छुटकारा पाने को ही मोक्ष कहा गया है। उसी को निर्वाण या मुक्ति भी कहते हैं। मुक्ति में हम भगवान् के साथ एक हो जाते हैं।

जय : समाज में रहकर काम करते हुए हम कर्म से कैसे बच सकते हैं?

दादी माँ : कर्म न कमाने का सबसे अच्छा रास्ता है - केवल अपने लिए ही कुछ न करना, जो करना, समाज की भलाई के लिए करना। सदा इस बात का ध्यान रखो कि माँ प्रकृति ही सब कुछ करती है, हम किसी भी काम के वास्तविक कर्त्ता नहीं हैं। यदि हमें इस बात में दृढ़ विश्वास है और हम भगवान् के सेवक के रूप में काम करते हैं, तो हम कोई नये कर्म नहीं कमायेंगे और आत्म-ज्ञान से हमारे सब पुराने कर्म मिट जायेंगे। कर्म के समाप्त हो जाने पर हम मुक्त हो जाते हैं। भगवान् के साथ मिल जाने का यह ढंग निष्काम कर्म या कर्मयोग का मार्ग कहलाता है।

जय : अपने पिछले जन्मों के कर्म से हमें कैसे छुटकारा मिलता है?

दादी माँ : बहुत अच्छा प्रश्न पूछा तुमने। आत्मा (अथवा परमात्मा) का सच्चा ज्ञान आग की तरह काम करता है - हमारे पिछले जन्मों के सभी कर्म को जला देता है (गीता 4.37)। निष्काम/ नि:स्वार्थ सेवा या कर्मयोग आत्मज्ञान पाने के लिए व्यक्ति को तैयार करता है। समय आने पर कर्मयोगी स्वयं ही आत्मज्ञान पा लेता है (गीता 4.38)। जिसे आत्मा/परमात्मा का ज्ञान सही रूप में मिल जाता है, वह आत्म-बुद्ध या परमात्म-ज्ञानी व्यक्ति कहलाता है।

जय : दादी माँ, क्या मोक्ष पाने के लिए और भी मार्ग हैं?

दादी माँ : हाँ, जय, प्रभु तक पहुँचने के (अन्य) भिन्न-भिन्न उपाय या मार्ग हैं। उन उपायों को (आध्यात्मिक) साधना कहा जाता है। समाज के लिए लाभकारी कोई भी कर्म यज्ञ भी कहा जाता है। अलग-अलग तरह के यज्ञ हैं- (1)अच्छे काम के लिए दिया गया दान - धन, (2)ध्यान, पूजा या योगाभ्यास, (3)परमात्मा का ज्ञान पाने के लिए धार्मिक ग्रन्थों का अध्ययन, और (4)मन तथा अन्य पाँच इन्द्रियों के ऊपर नियंत्रण। (गीता 4.28)

जो भी व्यक्ति इन यज्ञों में से कोई भी यज्ञ निष्ठा से करते हैं, प्रभु उनसे प्रसन्न होते हैं और उसे परमात्मा तक पहुँचने के लिए आत्मज्ञान का दान देते हैं। ऐसा व्यक्ति सुखी और शान्त होता है। (गीता 4.39)

जय : उनके बारे में आपका क्या विचार है जो रोज़ किसी दैवी मूर्ति की उपासना करते हैं? क्या उन्हें भी परमात्मा की प्राप्ति होती है?

दादी माँ : हाँ, जो पूरे विश्वास से दैवी मूर्ति की उपासना करते हैं, उन्हें भी मन-वांछित फल प्राप्त होता है(गीता 4.11-12)। अधिकांश हिन्दू अपनी इच्छाओं की पूर्ति के लिए परमात्मा की पूजा अपनी चुनी हुई एक दैवी मूर्ति के रूप में करते हैं। यह मार्ग पूजा या प्रार्थना का मार्ग कहलाता है। महाभारत में एक निष्ठ कर्मयोगी और आदर्श विद्यार्थी की कथा है, जिसने अपने गुरु की पूजा करके मन-वाञ्छित फल प्राप्त किया।

4 . एकलव्य - एक आदर्श छात्र

गुरु द्रोणाचार्य (या द्रोण) पितामह भीष्म द्वारा नियुक्त सभी कौरवों और पाण्डव भाइयों को शस्त्रविद्या सिखाने वाले गुरु थे। उनके नीचे अन्य राजकुमारों ने भी शस्त्रविद्या की शिक्षा पाई थी। द्रोण अर्जुन से अपनी व्यक्तिगत सेवा और भक्ति के लिए बहुत प्रसन्न थे। उन्होंने अर्जुन से वायदा किया था, “मैं तुम्हें विश्व का सर्वश्रेष्ठ धनुर्धर बनने के लिए प्रशिक्षण दूँगा।”

एक दिन एक बहुत ही सुशील लड़का, जिसका नाम एकलव्य था, निकट के एक गाँव से द्रोण के पास आया। वह उनसे धनुर्विद्या की शिक्षा पाना चाहता था। उसने अपनी माँ से महान् धनुर्शास्त्री द्रोणाचार्य के बारे में सुना था, जो ऋषि भारद्वाज के पुत्र और परशुराम ऋषि के शिष्य थे।

एकलव्य निषाद समाज का एक वनवासी लड़का था। उस युग में (और आज भी) ऐसे समुदाय सामाजिक दृष्टि से निम्न समझे जाते थे। द्रोण इस बात के प्रति चिन्तित थे कि वे राजकुमारों के साथ एक वनवासी लड़के को कैसे शिक्षा दें। इसलिए उन्होंने निश्चय किया कि वे उसे वहाँ नहीं रखेंगे। उन्होंने उससे कहा, “बेटे, मेरे लिए तुम्हें शिक्षा देना बहुत कठिन होगा। पर तुम एक जन्मजात धनुर्धर हो। वन में जाओ और मन लगाकर अभ्यास करो। तुम भी मेरे शिष्य हो। भगवान् करे, तुम अपनी इच्छा के अनुकूल सफल धनुर्धर बनो।”

द्रोण के शब्द एकलव्य के लिए महान् आशीर्वाद थे। उसने उनकी विवशता समझी और उसे पूरा विश्वास था कि गुरु की सद्भावनाएँ उसके साथ थीं। उसने द्रोणाचार्य की एक मिट्टी की प्रतिमा बनाई, उसे एक अच्छे स्थान पर प्रतिष्ठित किया और आदर के साथ फल-फूल आदि की भेंट के साथ उनकी पूजा करना शुरू कर दिया। उसने अपने गुरु की प्रतिमा की प्रतिदिन उपासना की और गुरु की अनुपस्थिति में धनुर्विद्या का अभ्यास किया। वह धनुर्विद्या में निपुण हो गया।

एकलव्य रोज़ सुबह उठता, नहाता और गुरु की प्रतिमा की पूजा करता। उसे गुरु के शब्द, कर्म और प्रशिक्षण के तरीकों में बेहद निष्ठा थी, जो उसने द्रोण के आश्रम में देखे-सुने थे। उसने निष्ठापूर्वक गुरु के निर्देशों का पालन किया और धनुर्विद्या का अभ्यास करता रहा।

जहाँ एक ओर अर्जुन ने प्रत्यक्ष गुरु द्रोण से शिक्षा पाकर धनुर्विद्या में निपुणता प्राप्त की, वहीं एकलव्य ने उसी के समान प्रभावशाली योग्यता दूर रहकर गुरु की पूजा करके पाई। यदि वह किसी विशेष तकनीक में सफल न होता, तो वह गुरु द्रोण की प्रतिमा के पास दौड़ता, उसके सामने अपनी समस्या रखता, ध्यानमग्न होकर अपने मस्तिष्क में हल पाने तक प्रतीक्षा करता और आगे अभ्यास करता।

एकलव्य की कथा सिद्ध करती है कि यदि किसी में पूरा विश्वास है और वह निष्ठापूर्वक अपने ध्येय की प्राप्ति के लिए काम करता है, तो वह कुछ भी पा सकता है।

कौरव और पाण्डव राजकुमार एक बार वन में शिकार खेलने के लिए गये। उनका निर्देशक कुत्ता उनके आगे-आगे भाग रहा था। श्यामवर्ण का युवक शेर की खाल पहने, सीपियों की माला पहने एकलव्य अपने अभ्यास में लगा था। उसके पास आने पर कुत्ता भौंकने लगा। शायद अपनी

निपुणता दर्शाने के लिए एकलव्य ने सात बाण एक-एक कर भौंकते हुए कुत्ते की ओर चलाये। उसके बाणों से कुत्ते का मुँह भर गया। कुत्ता वापिस राजकुमारों के पास भागा आया, जिन्हें धनुर्विद्या की ऐसी निपुणता देखकर बहुत आश्चर्य हुआ। वे सोचने लगे, ऐसा धनुर्धर कौन हो सकता है?

अर्जुन यह देखकर न केवल आश्चर्यचकित हो गया, वरन् वह चिन्ता से भी भर गया। उसकी कामना थी कि वह विश्वभर में सर्वश्रेष्ठ धनुर्धर के रूप में जाना जाये।

राजकुमार धनुर्धर की खोज में गये, जिसने इतने कम समय में उनके कुत्ते पर इतने बाण चलाये। उन्हें एकलव्य मिल गया।

अर्जुन ने कहा, "धनुर्विद्या में तुम्हें महान् योग्यता मिली है, तुम्हारा गुरु कौन है?"

मेरे गुरु द्रोणाचार्य हैं," एकलव्य ने विनम्रता से उत्तर दिया।

द्रोण का नाम सुनकर अर्जुन को बड़ा धक्का लगा। क्या यह सच था? क्या उसके प्रिय गुरु इस लड़के को इतना सिखा सकते थे? यदि ऐसा था, तो उसको दिये हुए गुरु के वायदे का क्या हुआ? द्रोण ने लड़के को कब शिक्षा दी? अर्जुन ने तो एकलव्य को कभी पहले अपनी कक्षा में देखा न था।

जब द्रोण ने यह कहानी सुनी, तो उन्हें एकलव्य याद आया। वे उससे मिलने गये।

द्रोण ने कहा, "बेटे, तुम्हारा शिक्षण बहुत अच्छा हुआ है। मुझे बहुत सन्तोष है। श्रद्धा और अभ्यास से तुमने बहुत प्रगति की है। प्रभु करे, तुम्हारी उपलब्धि दूसरों के लिए अच्छा उदाहरण सिद्ध हो।

एकलव्य ने बहुत प्रसन्न होकर कहा, "बहुत-बहुत धन्यवाद, गुरुदेव। आप मेरे गुरु हैं और मैं आपका ही शिष्य हूँ, नहीं तो मैं नहीं जानता मैं इतनी प्रगति कैसे कर पाता।"

द्रोण ने कहा, "यदि तुम मुझे अपना गुरु स्वीकार करते हो, तो तुम्हें प्रशिक्षण के बाद मुझे गुरु-दक्षिणा देनी पड़ेगी। फिर से सोच लो।"

एकलव्य ने मुस्कराकर कहा, "श्रीमन्, इसमें सोचने की क्या बात है? मैं आपका शिष्य हूँ और आप मेरे गुरु हैं। श्रीमन् आपकी जो इच्छा है, कहिये। मैं उसकी पूर्ति करूँगा, चाहे उस प्रयत्न में मुझे अपना जीवन भी समर्पित करना पड़े।"

"एकलव्य, मुझे भीष्म और अर्जुन को दिये अपने वचन को पूरा करने के लिए तुमसे महानतम त्याग की माँग करनी पड़ेगी। मैंने उन्हें वचन दिया है कि अर्जुन के समान विश्व में कभी कोई धनुर्धर नहीं होगा। उसके लिए बेटे, मुझे क्षमा करना, क्या तुम मुझे अपने दायें हाथ का अँगूठा दक्षिणा में दे सकते हो?"

एकलव्य ने द्रोणाचार्य की ओर देखा - पल भर के लिए। वह गुरु की समस्या समझ सकता था। तब वह खड़ा हुआ। दृढ़ निश्चय के साथ वह द्रोण की प्रतिमा की ओर गया। उसने एक शिला पर अपना दाहिना अँगूठा रखा और क्षण भर में बायें हाथ से बाण चलाकर उसे काट डाला।

एकलव्य को पहुँचाई वेदना के प्रति अत्यन्त दु:खी होते हुए भी द्रोण इतनी महान् श्रद्धा से बहुत भावुक हो उठे। उन्होंने एकलव्य को गले लगाया और कहा, "बेटे, तुम्हारे जैसी गुरु-श्रद्धा का कोई उदाहरण नहीं। तुम्हारे जैसा शिष्य पाकर मैं अपने को सफल और धन्य अनुभव करता हूँ। प्रभु का वरदहस्त तुम पर रहे।"

हार में भी एकलव्य ने विजय पाई। दाएँ अँगूठे के कट जाने से वह अब धनुष का प्रयोग प्रभावी ढ़ंग से नहीं कर सकता था, किन्तु वह बाएँ हाथ से अभ्यास करता रहा। अपने महान् त्याग के कारण वह प्रभु की कृपा का पात्र बना और वाम-हस्त-धनुर्धर के रूप में विशेष योग्यता पाई। उसने सिद्ध कर दिया कि निष्ठ प्रयास से कुछ भी ऐसा नहीं, जो पाया न जा सके। एकलव्य ने अपने कर्म और व्यवहार से यह दिखा दिया कि समाज में तुम्हारा स्थान ऊँचा या नीचा तुम्हारी जाति से नहीं बनता, बल्कि बनता है तुम्हारे स्वप्न और मन-मस्तिष्क के गुणों से।

द्रोण महान् गुरु थे, जय। पर बहुत से नकली गुरु हैं, जो तुम्हें धोखा देने का प्रयत्न करते हैं।

जय : प्रभु की प्राप्ति के लिए गुरु ज़रूरी है क्या, दादी माँ?

दादी माँ : किसी भी विषय की शिक्षा पाने के लिए, चाहे वह आध्यात्मिक हो या भौतिक, निश्चय ही हमें गुरु की ज़रूरत होती है। किन्तु असली गुरु का मिलना इतना आसान नहीं है। गुरु चार प्रकार के होते हैं : अपने विषय का ज्ञान रखने वाला गुरु, नकली गुरु, सद्गुरु और परम गुरु। दुनिया में बहुत से नकली गुरु हैं, जो गुरु होने का ढ़ोंग रचते हैं। सद्गुरु प्रभु-ज्ञानी गुरु है और उसकी खोज बहुत कठिन है। भगवान् कृष्ण को जगद्गुरु या परमगुरु कहा जाता है।

कॉलिज की पढ़ाई समाप्त करने पर जब तुम गृहस्थ जीवन में प्रवेश करोगे, तो तुम्हें आध्यात्मिक गुरु की ज़रूरत होगी। तब तक अपने शास्त्र-ग्रन्थों का अनुसरण करो, अपनी संस्कृति के अनुसार चलो और जीवन में कभी भी हार न मानो।

अध्याय चार : सार - समय-समय पर पृथिवी पर चीज़ों को ठीक करने के लिए प्रभु जीव रूप में पृथिवी पर आते हैं। वे उनकी इच्छाएँ पूरी करते हैं, जो उनकी उपासना करते हैं। विश्व में चार प्रकार के यज्ञ हैं। नि:स्वार्थ/ निष्काम सेवा और आत्म-ज्ञान दोनों ही आत्मा को कर्म-बन्धन से मुक्त करते हैं। प्रभु नि:स्वार्थ/ निष्काम सेवा करने वाले लोगों को आत्म-ज्ञान देते हैं। आत्म-ज्ञान से हमारे सब पिछले कर्म भस्म होते हैं। वह हमें जन्म-मरण के चक्र से मुक्ति दिलाता है।

अध्याय पाँच

कर्म-संन्यास मार्ग

जय : आपने पहले दो मार्गों की चर्चा की। दादी माँ, अधिकांश लोगों के लिए कौनसा मार्ग अच्छा है? आत्म-ज्ञान का या नि:स्वार्थ/ निष्काम सेवा का?

दादी माँ : वह व्यक्ति, जिसे परमात्मा का सही ज्ञान होता है, जानता है कि सारे कार्य प्रकृति माँ की शक्ति से किये जाते हैं और वह किसी कार्य का वास्तविक कर्त्ता नहीं है। ऐसे व्यक्ति को सन्यासी कहा जाता है। वह आत्म-ज्ञानी है।

कर्मयोगी व्यक्ति स्वार्थ भरे उद्देश्यों से ऊपर उठकर कर्म करता है। कर्मयोगी आत्म-ज्ञान पाने की तैयारी करता है (गीता **4.38, 5.06**)। आत्म-ज्ञान सन्यास की ओर ले जाता है। इस प्रकार नि:स्वार्थ/ निष्काम सेवा या कर्मयोग सन्यास का आधार बनता है! दोनों ही मार्ग अन्त में प्रभु की ओर ले जाते हैं। भगवान् कृष्ण इन दोनों मार्गों में से कर्मयोग को बेहतर समझते हैं क्योंकि अधिकांश लोगों के लिए यह मार्ग सरल है और इस पर तेज़ी से चला जा सकता है। (गीता **5.02**)

जय : क्या सन्यास शब्द का अर्थ प्राय: सांसारिक वस्तुओं का त्याग करना और आश्रम में रहना या एकान्त वास करना नहीं है?

दादी माँ : शाब्दिक रूप से सन्यास का अर्थ सब व्यक्तिगत ध्येयों का, सांसारिक वस्तुओं का त्याग करना है। किन्तु इसका अर्थ समाज में रहकर व्यक्तिगत स्वार्थों के बिना अपने कर्त्तव्य का पालन करते हुए समाज की सेवा करना भी है। ऐसे व्यक्ति को कर्म-सन्यासी कहा जाता है।

आदि शंकराचार्य जैसे कुछ आध्यात्मिक नेता/ गुरु सारी सांसारिक वस्तुओं के त्याग के मार्ग को उच्चतम मार्ग और जीवन का ध्येय मानते हैं। वे अपने लड़कपन में ही सन्यासी हो गये थे।

भगवान् कृष्ण कहते हैं, "एक प्रबुद्ध व्यक्ति या सब स्वार्थों का त्यागी, सन्यासी सब प्राणियों में भगवान् को देखता है। ऐसा व्यक्ति शिक्षित या अशिक्षित व्यक्ति को, धनी या निर्धन, जाति-बहिष्कृत व्यक्ति को, यहाँ तक कि गाय, हाथी या कुत्ते को भी समान दृष्टि से देखता है। (गीता **5.18**)

मैं तुम्हें एक महान् आध्यात्मिक गुरु/ नेता, महानायक, सन्यासी और विचारक की कथा सुनाती हूँ। उनका नाम है आदि शंकराचार्य। गीता के अध्येता के लिए वे महान् आदर और सम्मान के पात्र हैं।

5. आदि शंकराचार्य

आदि शंकराचार्य या शंकर वेदान्त के अद्वैतवाद दर्शन के रचयिता और प्रसारक हैं। इस दर्शन के अनुसार सारा विश्व ही ब्रह्म/ परमात्मा है, और कुछ नहीं। शंकर का जन्म **788** ईसवी में केरल राज्य में हुआ था। उन्होंने आठ वर्ष की उम्र में चारों वेदों का अध्ययन कर लिया था और बारह वर्ष की उम्र तक वे सब हिन्दू शास्त्रों में पारंगत हो गये थे।

उन्होंने कई ग्रन्थों की रचना की - जिनमें भगवद्गीता, उपनिषदों और ब्रह्म सूत्र आदि अनेक ग्रन्थों के भाष्य शामिल हैं। शंकर द्वारा हमारे लिए अलग करने से पहले भगवद्गीता महाभारत में एक अध्याय के रूप में लुप्त थी। शंकर ने गीता को महाभारत से निकालकर उसे शीर्षक देकर अध्यायों में व्यवस्थित किया और संस्कृत में पहला गीता-भाष्य लिखा। गीता का प्रथम अंग्रेजी अनुवाद एक ब्रिटिश शासक ने **19**वीं शताब्दी में किया था।

शंकर ने भारत के विभिन्न कोनों में चार मठों की स्थापना की। वे श्रृंगेरी, बद्रीनाथ, द्वारका और पुरी में हैं। उन्होंने हिन्दू आदर्शों के विरोध में होते बौद्ध धर्म के प्रसार को रोका और हिन्दू धर्म को उसकी अतीत की महिमा से मंडित किया। उनके अद्वैत दर्शन के अनुसार जीव - व्यक्तिगत आत्मा - ही ब्रह्म है। संसार ब्रह्म की माया का खेल है।

निश्चय ही वे आत्म-ज्ञानी व्यक्ति थे। किन्तु आरम्भ में उन्हें द्वैत की अनुभूति थी - ऊँची और निम्न जाति के रूप में। उनके हृदय में ब्रह्म में पूरी तरह दृढ़ विश्वास जड़ नहीं जमा पाया था।

एक दिन वे पावन नदी गंगा में स्नान कर बनारस की पावन नगरी में शिव मन्दिर जा रहे थे। उन्हें माँस का बोझ लिये एक कसाई, अछूत मिला। कसाई उनकी ओर आया और उनके सम्मान में उसने शंकर के चरण छूने का प्रयत्न किया।

शंकर क्रोध में भर कर चिल्लाये, "मेरे मार्ग से हट जाओ। तुम्हारी हिम्मत कैसे हुई मुझे छूने की? अब मुझे फिर से स्नान करना होगा।"

कसाई ने कहा, "प्रभुवर, न मैंने आपको छुआ है, न आपने मुझे। शुद्ध आत्मा, शरीर या पंचतत्त्व, जिनसे शरीर बना है, नहीं हो सकती।" (अध्याय **13** में अधिक विवरण है)

तब शंकर को कसाई में भगवान् शिव के दर्शन हुए। भगवान् शिव स्वयं शंकर के हृदय में अद्वैत दर्शन का बीज गहराई से रोपने आये थे। भगवान् शिव की कृपा से उस दिन से श्रेष्ठतर व्यक्ति थे।

यह कथा हमें दर्शाती है कि हर समय सब जीवों के साथ समानता का व्यवहार करना बहुत कठिन है। ऐसी भावना का होना सच्चे ब्रह्म-ज्ञानी या पूर्ण सन्यासी होने का लक्षण है।

अध्याय पाँच : सार - भगवान् कृष्ण अधिकांश लोगों के लिए फलों के प्रति मोह न रखते हुए मानवता की निःस्वार्थ/ निष्काम सेवा के मार्ग को सर्वश्रेष्ठ मानते हैं। आत्मज्ञान और सेवा - दोनों ही प्रकार के मार्ग इस लोक में सुख की ओर ले जाते हैं और मरने पर निर्वाण की ओर। सन्यास का अर्थ सांसारिक पदार्थों का त्याग नहीं है। सन्यास का अर्थ है सांसारिक पदार्थों के प्रति लगाव/ मोह न होना। आत्म-ज्ञानी प्रवुद्ध व्यक्ति हर जीव में प्रभु के दर्शन करता है और सबके प्रति समान व्यवहार करता है।

अध्याय छः:

आत्म-संयम (ध्यान मार्ग)

जय : दादी माँ, आपने कहा था कि भगवान् की प्राप्ति के लिए कई मार्ग हैं। आपने मुझे सेवा-कर्त्तव्य-मार्ग और आध्यात्मिक ज्ञान-मार्ग के विषय में बताया। कृपया मुझे अन्य मार्गों के बारे में बतायें।

दादी माँ : तीसरा मार्ग ध्यान-योग का है। जो भगवान् के साथ मिलकर एकात्म होकर एक हो जाता है, उसे योगी कहते हैं। योगी का मन शान्त होता है और पूरी तरह प्रभु के साथ जुड़ा हुआ। योगी का अपने मन, इन्द्रियों और इच्छाओं पर पूरा नियंत्रण होता है। क्रोध और लोभ से वह पूरी तरह मुक्त होता है। योगी के लिए माटी का ढ़ेला, पत्थर और सोना सब एक समान होता है। वह हर चीज़ में भगवान् और भगवान् में हर चीज़ देखता है (गीता **6.08, 14.24**)। योगी हर व्यक्ति को एक आँख से देखता है, चाहे वह मित्र हो या शत्रु , घृणा करने वाला हो या सम्बन्धी, सन्त हो या पापी (गीता **6.09**)। बुरे से बुरे समय में भी योगी का मन शान्त रहता है। (गीता **6.19**)

जय : क्या बच्चों के लिए ध्यान-योग का कोई सरल सा उपाय है, दादी माँ?

दादी माँ : हाँ, है। मन ही तुम्हारा सबसे अच्छा मित्र है और मन ही सबसे बुरा शत्रु। मन उनके लिए मित्र है, जो इसे नियंत्रण में रखते हैं और उनके लिए शत्रु है जिनका नियंत्रण उस पर नहीं रहता (गीता **6.05-06**)। इसलिए तुम्हें इस शत्रु को वश में करने का प्रयत्न करना चाहिये। मन हवा की भाँति है, बहुत ही चंचल और नियंत्रण करने के लिए कठिन। किन्तु तुम नियमित रूप से ध्यान-योग का अभ्यास करके इसे वश में कर सकते हो (गीता **6.34**)। गुरु नानक ने कहा है : मन को जीत लो, तो तुम सारे संसार को जीत लोगे।

ध्यान-योग का सरल उपाय

ध्यान-योग के लिए सबसे अच्छा समय स्कूल जाने से पहले सुबह का है। अपने ध्यान या पूजा के कमरे में बैठ जाओ। अपनी छाती, रीढ़, गर्दन और सिर को सीधा करो - निश्चल और दृढ़। अपनी आँखें वन्द करो और कुछ मंद, गहरी साँसें लो। अपनी प्रिय देवता का ध्यान करो और उसका आशीर्वाद माँगो। मन-मन में **'ओम्'** का पाँच मिनट जाप करो। यदि तुम्हारा मन इधर-उधर भागने लगे, तो उसे धीरे से अपने इष्ट देवी/ देवता पर वापिस लगाओ।

हमारे धर्म-ग्रन्थों में ध्रुव नाम के एक बालक की कथा है, जिसने ध्यान-योग-मार्ग का अनुसरण करके अपनी कामनाएँ पूरी कीं।

6 . ध्रुव की कथा

ध्रुव राजा उत्तानपाद और रानी सुनीति का बेटा था। राजा उत्तानपाद को अपनी दूसरी पत्नी सुरुचि से गहरा प्यार था। ध्रुव की माँ सुनीति के प्रति उसका दुष्टता का व्यवहार था।

एक दिन जब ध्रुव पाँच वर्ष का था, तो उसका सौतेला भाई उनके पिता की गोद में बैठा था। ध्रुव ने भी वहाँ बैठना चाहा। किंतु उसकी सौतेली माँ ने उसे रोक दिया और घसीटकर एक ओर कर दिया।

वह बहुत ही बेरुखी से ध्रुव से बोली, "यदि तुम्हें अपने पिता की गोद में बैठने की इच्छा थी, तो अपनी माँ की जगह मेरी कोख से जन्म लिया होता। कम से कम अब भगवान् विष्णु से प्रार्थना तो करो कि वह इस बात को सम्भव बनायें।"

ध्रुव को अपनी सौतेली माँ के अपमान भरे वचनों से बहुत गहरा दुःख पहुँचा। वह रोता हुआ अपनी माँ के पास

गया। उसकी माँ ने उसे ढ़ाँढ़स बँधाया और अपनी सौतेली माँ की बात को गम्भीरता से लेकर भगवान् विष्णु की उपासना करने को कहा, जो सब जीवों के सहायक हैं।

ध्रुव ने पिता का राज्य छोड़कर भगवान् विष्णु के दर्शन करने के दृढ़ निश्चय के साथ वन की राह ली। वह ऊँचे स्थान पर जाना चाहता था। मार्ग में उसे नारद मुनि मिले। उन्होंने उसे भगवान् कृष्ण के विष्णु रूप की पूजा करने के लिए बारह अक्षरों का मंत्र दिया, **"ओम् नमो भगवते वासुदेवाय"**। ध्रुव ने छ: मास तक भगवान् विष्णु की पूजा की। विष्णु भगवान् ने उसे दर्श न दिये। भगवान् विष्णु ने ध्रुव को वचन दिया कि ध्रुव की मनोकामना पूरी होगी और वह ध्रुव नक्षत्र के उच्चतम दैवीय स्थान पर प्रतिष्ठित होगा।

ध्रुव राज्य में लौट गया। जब राजा बूढ़ा हो गया, तो उसने ध्रुव को राजा के रूप में अभिषिक्त करने का निर्णय किया। ध्रुव ने बहुत वर्षों तक राज्य किया और अन्त में भगवान् विष्णु द्वारा वरदान पाकर ध्रुव नक्षत्र पहुँच गया। कहा गया है कि सारा अंतरिक्ष नक्षत्र और तारों आदि से बना है। सभी ध्रुव नक्षत्र के इर्द-गिर्द घूमते हैं। आज तक, जब भी भारतीय लोग ध्रुव नक्षत्र को देखते हैं, तो मन की पूर्ण पावनता वाले दृढ़ निश्चयी भक्त ध्रुव को याद करते हैं।

जय : जो योगी इस जीवन में सफल नहीं होता, उसका क्या होता है?

दादी माँ : योगी का किया हुआ कोई भी आध्यात्मिक अभ्यास कभी व्यर्थ नहीं जाता। असफल योगी का पुनर्जन्म प्रगतिशील आध्यात्मिक या धनी परिवार में होता है। वह उस ज्ञान को पुन: प्राप्त कर लेता है, जो उसने पिछले जन्म में अर्जित किया था और जहाँ उसने छोड़ा था, उससे आगे चलकर वह पूर्णता प्राप्त करने का पुन: प्रयत्न करता है। कोई भी आध्यात्मिक प्रयास व्यर्थ नहीं जाता है।

जय : दादी माँ, मैं सर्वश्रेष्ठ योगी कैसे बन सकता हूँ?

दादी माँ : सर्वश्रेष्ठ योगी बनने के लिए सब जीवों को अपने जैसा देखो। दूसरों के सुख-दु:ख को अपना समझो। ध्यान-योग का बहुत सरल तरीका **'ओम्'** के ध्वनित जाप के प्रयोग का है। कोई भी आध्यात्मिक अभ्यास व्यर्थ नहीं जाता है।

अध्याय सात

ज्ञान - विज्ञान

जय : सारे विश्व का निर्माण कैसे हुआ, दादी माँ? क्या उसका कोई सृष्टा है?

दादी माँ : किसी भी सृष्टि के पीछे एक सृष्टा है, जय। कोई भी चीज़, उसके पीछे विना किसी व्यक्ति या शक्ति के पैदा नहीं की जा सकती, नहीं बनाई जा सकती। न केवल उसकी सृष्टि के लिए, वल्कि उसका पोषण और संचालन करने के लिए भी किसी न किसी शक्ति की ज़रूरत होती है। हम उस शक्ति को भगवान् कहते हैं। परमप्रभु, परमात्मा, कृष्ण, ईश्वर, शिव कहते हैं। दूसरे धर्मों ने उसे अल्लाह, पिता, जहोवा, और अन्य नामों से पुकारा है। वास्तविक अर्थ में भगवान् विश्व/ सृष्टि का सृष्टा नहीं है, बल्कि वह स्वयं ही विश्व में हर वस्तु का रूप धारण करता है। वह ब्रह्मा के रूप में अवतरित होता है, जिसे हम सृष्टा कहते हैं। वास्तव में ब्रह्मा और अन्य सभी देवी-देवता एक ओर केवल एक ही भगवान् की भिन्न-भिन्न शक्तियों के नाम हैं। लोग सोचते हैं कि हिन्दू बहुत से देवी-देवताओं की पूजा करते हैं, पर उनका ऐसा सोचना सच्चे ज्ञान के अभाव के कारण है। सारा विश्व ही भगवान् का स्वरूप है। यही उच्चतम दर्शन है, जिसको शायद तुम अभी पूरी तरह नहीं समझ सकते।

जय : एक भगवान् विश्व में इतनी वस्तुएँ कैसे बन जाता है?

दादी माँ : सांख्य के सृष्टि-सिद्धान्त के अनुसार आत्मा स्वयं प्रकृति या पदार्थ का रूप धारण कर लेती है, जो पाँच मूल तत्त्वों से बने हैं। सारी सृष्टि आत्मा और प्रकृति (पदार्थ) इन दो ही शक्तियों के विभिन्न योगों से उत्पन्न होती है और रहती है (गीता 7.06)। वही सूर्य और चन्द्रमा में प्रकाश के रूप में है। मानवों में वह मन और बल के रूप में है। वह हमारे भोजन को पचाती है और जीवन को सहारा देती है। उसी आत्मा के द्वारा हम सब (एक-दूसरे से) जुड़े हैं, जैसे माला की सब मणियाँ एक ही धागे से जुड़ी होती हैं। (गीता 7.07)

जय : यदि परमात्मा सब जगह है और सब चीज़ों में है, तो हर कोई उसे समझता क्यों नहीं, प्यार क्यों नहीं करता और उसकी पूजा क्यों नहीं करता?

दादी माँ : बहुत अच्छा प्रश्न है यह, जय। प्राय: लोगों का परमात्मा के बारे में भ्रामक विचार होता है, क्योंकि हर किसी को उसको समझने की शक्ति नहीं मिली है। जैसे कुछ लोग कैल्कुलस या साधारण गणित भी नहीं समझ पाते, वैसे ही वे लोग, जिनके अच्छे कर्म नहीं है, परमात्मा को न जान सकते हैं, न समझ सकते हैं, न उसे प्यार कर सकते हैं और न ही उसकी पूजा कर सकते हैं।

जय : तब वे कौन हैं, जो परमात्मा को समझ सकते हैं?

दादी माँ : चार प्रकार के लोग हैं, जो परमात्मा की उपासना करते हैं या उसे समझने का प्रयास करते हैं। (1)वे जो रोगी हैं या किसी संकट में हैं या अपने अध्ययन या अन्य काम को

भली-भाँति करने में सहायता चाहते हैं। (2)जो परमात्मा का ज्ञान पाने का प्रयत्न कर रहे हैं। (3)वे, जिन्हें धन की इच्छा है और (4)वे ज्ञानी, जिन्हें भगवान् का ज्ञान है (गीता 7.16)। भगवान् कृष्ण चारों प्रकार के लोगों को भक्त मानते हैं। ज्ञानी पुरुष सर्व श्रेष्ठ है क्योंकि वह भगवान् से विना किसी चीज़ की इच्छा किये उनकी उपासना करता है। ऐसा ज्ञानी पुरुष भी भगवान् को पूरी तरह कई जन्मों के बाद ही जानता है। (गीता 7.19)

जय : यदि मैं कृष्ण की पूजा करूँ, तो क्या मुझे परीक्षा में अच्छे अंक मिल सकेंगे या मुझे रोग से मुक्ति मिल जायेगी?

दादी माँ : हाँ। वे उन सबकी इच्छाएँ पूरी करते हैं, जो उनमें विश्वास रखते हैं और पूरी आस्था के साथ सदा उनकी प्रार्थ ना-उपासना करते हैं। परमात्मा हमारी माता और हमारे पिता दोनों हैं। तुम्हें प्रभु से जो चाहिये, अपनी प्रार्थना में माँगना चाहिये। वे अपने निष्ठ भक्तों की इच्छाएँ ज़रूर पूरी करते हैं। (गीता 7.21)

जय : फिर हर कोई कृष्ण की पूजा क्यों नहीं करता? हम गणेश देवता, हनुमान, माँ सरस्वती और कई और देवी-देवताओं की पूजा क्यों करते हैं?

दादी माँ : भगवान् कृष्ण परम प्रभु का नाम है। हिन्दू धर्म के कुछ सम्प्रदाय परम प्रभु को भगवान् शिव कहते हैं। अन्य धर्मों के अनुयायी उसे बुद्ध, ईसा, अल्लाह, पिता आदि कहते हैं। अन्य देवी-देवता उसी की शक्ति के अंग हैं। जैसे वर्षा का सारा जल सागर को जाता है, उसी प्रकार किसी भी देवी-देवता की पूजा कृष्ण को जाती है, परम प्रभु को जाती है। किन्तु आरम्भ में व्यक्ति को अनेक में से एक देवी/ देवता को चुनकर पूजा के द्वारा उससे व्यक्तिगत सम्बन्ध स्थापित करना चाहिये या कम से कम निर्वाचित देवी/ देवता को नित्य नमस्कार करना चाहिये। वह व्यक्तिगत देवी/ देवता तव तुम्हारा व्यक्तिगत मार्गदर्शक बन जाता है। व्यक्तिगत देवी/ देवता को इष्ट देवी या इष्ट देवता कहते हैं।

जय : आपने कहा कि सारा विश्व परमात्मा का ही दूसरा रूप है। क्या भगवान् निराकार है या भगवान् कोई रूप धारण करता है?

दादी माँ : यह बड़ा प्रश्न न केवल बच्चों में भ्रम पैदा करता है, वल्कि बड़ों के लिए भी समस्या है। इस प्रश्न के उत्तर के आधार पर हिन्दू धर्म में कई सम्प्रदाय या वर्ग पैदा हो गये हैं। एक सम्प्रदाय, जिसका नाम आर्यसमाज है, मानता है कि भगवान् कोई रूप धारण नहीं कर सकता है और निराकार है, दूसरे वर्ग का विश्वास है कि भगवान् रूप धारण करता है - उसका एक स्वरूप है। तीसरे वर्ग का विश्वास है वह निराकार है, और रूप भी धारण करता है। और एक वर्ग ऐसा भी है जो विश्वास करता है कि भगवान् निराकार और साकार दोनों है।

मेरा विश्वास है कि हर चीज़ का एक रूप है। संसार में कुछ भी विना रूप के नहीं। प्रभु का भी एक रूप है, जो हमारी भौतिक आँखों के लिए अदृश्य है। उसे मानवीय मस्तिष्क से नहीं समझा जा सकता, न ही शब्दों से उसका वर्णन किया जा सकता है। परमात्मा इन्द्रियातीत विराट अलौकिक रूप वाला है। उसका कोई मूल नहीं है, कोई आदि नहीं है, किन्तु वह हर चीज़ का मूल है और हर चीज़ के आदि में है। उसका कोई आदि-अन्त नहीं है। अदृश्य परमात्मा दृश्य विश्व का कारण है। अदृश्य का अर्थ निराकार नहीं है। जो भी हम देखते हैं, वह परमात्मा का ही दूसरा रूप है।

जैसा कि गीता (7 : 19) में कहा गया है, सब वस्तुओं में परमात्मा को देखने के व्यावहारिक रूप को दर्शाते हुए एक कथा है।

7. सब जीवों में प्रभु को देखें

एक वन में एक सन्त महात्मा रहते थे। उनके बहुत से शिष्य थे। उन्होंने अपने शिष्यों को सब जीवों में प्रभु को देखने की शिक्षा दी और सबको झुककर प्रणाम करने को कहा। एक बार उनका एक शिष्य जंगल में आग के लिए लकड़ी लेने गया। आचानक उसे एक चीख़ सुनाई दी।

"रास्ते से हट जाओ। एक पागल हाथी आ रहा है।"

महात्मा के शिष्य को छोड़कर सब लोग भाग खड़े हुए। उसने हाथी को भगवान् के ही एक अन्य रूप में देखा। तो क्यों भागता वह उससे? वह निश्चल खड़ा रहा। झुककर हाथी को प्रणाम किया। हाथी के रूप में भगवान् में ध्यान-योग करना शुरू कर दिया।

हाथी का महावत चिल्लाया, "भागो, भागो।"

किन्तु शिष्य नहीं हिला। हाथी ने उसे अपनी सूँड से पकड़ा और एक तरफ फेंक कर अपने रास्ते पर चलता बना। शिष्य धरती पर वेहोश पड़ा रहा। इस घटना की बात सुनकर उसके गुरुभाई आये और उसे उठाकर आश्रम में ले गये। जड़ी-बूटी की दवा से वह फिर होश में आ गया।

तव किसी न पूछा, "जव तुम्हें पता था कि पागल हाथी आ रहा है, तो तुम उस जगह को छोड़कर भागे क्यों नहीं?"

उसने उत्तर दिया, "हमारे गुरु जी ने हमें सिखाया है कि प्रभु सव जीवों में है, पशुओं में भी और मानवों में भी। अत: मैंने सोचा कि वह केवल हाथी-देवता ही था, जो आ रहा था। इसलिए मैं भागा नहीं।"

इस पर गुरु ने कहा, "हाँ, मेरे बच्चे, यह तो सच है कि हाथी-देवता आ रहा था, किन्तु महन्त-देवता ने तो तुमसे रास्ते से हट जाने को कहा। तुमने महन्त के शब्दों पर विश्वास क्यों नहीं किया? फिर हाथी-देवता को आत्म-ज्ञान था नहीं कि हम सब प्रभु हैं।"

परमात्मा सब जीवों में रहता है। वह बाघ में भी है, पर इस कारण हम बाघ को गले तो नहीं लगा सकते। केवल अच्छे लोगों के समीप रहो और पापात्माओं से दूर रहो। अपावन, पापी और दुर्जनों से दूर रहो।

8. अदृश्य

एक दिन एक छः वर्ष की लड़की कक्षा में बैठी थी। अध्यापक विकास-सिद्धान्त को बच्चों को समझा रहा था।

अध्यापक ने एक छोटे बच्चे से पूछा, "मानव, क्या तुम्हें बाहर एक पेड़ दिखाई देता है?"

मानव - "हाँ।"

अध्यापक - "बाहर जाओ और देखो कि तुम आकाश को देखते हो या नहीं।"

मानव - "अच्छा।" (कुछ मिनटों में लौटकर) "हाँ, मैंने आकाश देखा।"

अध्यापक - "तुमने कहीं परमात्मा को देखा?"

मानव - "नहीं।"

अध्यापक - "यही तो मैं कहता हूँ। हम परमात्मा को नहीं देख सकते क्योंकि वह वहाँ है ही नहीं। उसका अस्तित्व ही नहीं।"

एक छोटी लड़की बोल उठी। वह लड़के से कुछ प्रश्न पूछना चाहती थी। अध्यापक ने अनुमति दे दी। छोटी लड़की ने लड़के से पूछा, "मानव, तुमने बाहर पेड़ को देखा?"

मानव - "हाँ।"

छोटी लड़की - "मानव, तुम्हें बाहर घास दिखाई देती है?"

मानव - "हाँ...आँ।"

छोटी लड़की - "मानव, तुम अध्यापक को देखते हो?"

मानव - "हाँ।"

छोटी लड़की - "क्या तुम उनके मन या मस्तिष्क को देखते हो?"

मानव - "नहीं।"

छोटी लड़की - "फिर तो जो हमें आज स्कूल में पढ़ाया गया, उसके अनुसार उनके मन होगा ही नहीं।"

परमात्मा हमारी भौतिक आँखों से नहीं देखा जा सकता। उसे केवल ज्ञान, आस्था और भक्ति की आँखों से देखा जा सकता है (गीता **7.24-25**)। हम दृष्टि से नहीं, विश्वास से चलते हैं। वह हमारी प्रार्थनाओं का उत्तर देता है, उन्हें सुनता है।

अध्याय सात : सार - परमात्मा एक ही है, जो अनेक नामों से पुकारा जाता है। हमारे धर्म में देवी-देवता या प्रतिमाएँ कुछ भी नहीं, बस उसी एक परम प्रभु की भिन्न शक्तियों के नाम हैं। देवी-देवता हमें पूजा और प्रार्थना में सहायता करने के लिए भिन्न-भिन्न नाम और रूप हैं। सारी सृष्टि पाँच मूल तत्त्वों और आत्मा से बनी है। परमात्मा निराकार भी है और साकार भी। वह कोई भी रूप धारण कर सकता है। बिना आध्यात्मिक ज्ञान के कोई परमात्मा की सही प्रकृति को नहीं जान सकता।

अध्याय आठ

अक्षर - ब्रह्म

जय : दादी माँ, मेरी आध्यात्मिक शब्दावली बहुत बड़ी नहीं है, इसलिए मैं बहुत से शब्दों को, जो मैं मन्दिर में सुनता हूँ, समझ नहीं पाता। क्या उनमें से कुछ शब्दों को आप समझा सकती हैं?

दादी माँ : मैं कुछ संस्कृत शब्दों को समझाऊँगी, तुम ध्यान से सुनो। इन पारिभाषिक शब्दों को शायद इस उम्र में पूरी तरह न भी समझ पाओ।

जो आत्मा सब जीवों में, जो जीवित हैं, पाई जाती है, उसको संस्कृत में ब्रह्म कहते हैं। ब्रह्म न केवल सब जीवों का पोषण करता है, उनका आधार है, बल्कि सारे विश्व का भी वह आधार है, पोषणकर्त्ता है। परमात्मा की यह निराकार प्रकृति है, परम ब्रह्म अनादि, अनन्त, शाश्वत और अपरिवर्तनीय है। अतः इसको अजर/ अमर/ शाश्वत ब्रह्म भी कहते हैं। **ब्रह्म** शब्द से प्रायः **ब्रह्मा** का भ्रम भी हो जाता है, जो सृष्टिकर्त्ता है विश्व का, क्रियात्मक ऊर्जा/ शक्ति है। **ब्रह्म** को **ब्रह्मन्** भी कहते हैं। **ब्रह्मन्** शब्द से कभी-कभी **ब्राह्मण** का भ्रम भी हो जाता है, जो भारत में एक ऊँची जाति या बौद्धिक वर्ग का द्योतक है। इस शब्द को मैं आगे अध्याय **18** में समझाऊँगी।

परब्रह्म, परमात्मा, पिता, माता, परम प्रभु है, जो सब चीज़ों का मूल है - ब्रह्म/ आत्मा का भी।

कर्म शब्द के कई अर्थ हैं। साधारणत: इसका अर्थ काम/ क्रिया है, जो हम करते हैं। इसका अर्थ पिछले जन्मों में किये गये कर्मों के जमा हुए फल, भी है।

ब्रह्म की विभिन्न शक्तियों को **देव, देवी** या **देवता** कहते हैं। हम अपनी इच्छाओं की पूर्ति के लिए इनकी पूजा करते हैं।

ईश्वर परमात्मा की वह शक्ति है, जो हर जीवित जीव के शरीर में रहकर हमारा मार्गदर्शन करती है और हम पर नियंत्रण रखती है।

भगवान् का सीधा-सादा अर्थ है शक्तिशाली। यह शब्द परमात्मा के लिए प्रयोग किया जाता है। श्रीकृष्ण को हम भगवान् कृष्ण भी कहते हैं।

जीव या **जीवात्मा** वे जीवित प्राणी हैं, जो जन्म लेते हैं, सीमित आयु पाते हैं और मरते हैं या रूप बदलते हैं।

जय : मुझे प्रभु की याद/ स्मरण और उपासना कितनी बार करनी चाहिये ताकि मुझे इस बात का निश्चय हो जाये कि मृत्यु के समय मैं प्रभु का स्मरण करूँगा।

दादी माँ : हमें खाने से पहले, सोने से पहले, प्रात:काल उठने के बाद और काम या अध्ययन शुरू करने से पहले परमात्मा को याद करने की आदत डालनी चाहिये।

जय : क्या हम सदा मनुष्य के रूप में ही पुनर्जन्म लेते हैं?

दादी माँ : मनुष्य पृथिवी पर पाई जाने वाली चौरासी लाख योनियों में से किसी में भी पुन: जन्म ले सकते हैं। मृत्यु के उपरान्त जीवन में हिन्दुओं का विश्वास है। भगवान् कृष्ण ने कहा है, "मृत्यु के समय व्यक्ति जिस पदार्थ (रूप) का भी स्मरण करता है, मृत्यु के बाद वही पाता है। मृत्यु के समय व्यक्ति वही याद करता है, जिसका विचार उसके जीवन-काल में अधिकांशत: रहता है।" (गीता 8.06) अत: मनुष्य को हर समय प्रभु का स्मरण करते हुए अपने कर्त्तव्य का पालन करना चाहिये। (गीता 8.07)

आत्मा के पुनर्जन्म को समझाने के लिए एक कथा है।

9. राजा भरत की कथा

जब ऋषि विश्वामित्र अपने ही अलग विश्व की सृष्टि करने में व्यस्त थे, तो स्वर्ग के राजा इन्द्र को यह सहन न हुआ। तब इन्द्र ने स्वर्ग की सुन्दरी नर्तकी मेनका को उनके काम में विघ्न डालने को भेजा। मेनका अपने काम में सफल हो गई और विश्वामित्र ऋषि की एक पुत्री को उसने जन्म दिया, जिसका नाम शकुन्तला था। मेनका के उसे त्याग कर स्वर्ग चले जाने के बाद शकुन्तला का पालन-पोषण कण्व ऋषि के आश्रम में हुआ।

एक दिन दुष्यन्त नाम के एक राजा ने कण्व ऋषि के आश्रम में प्रवेश किया। वहाँ वह शकुन्तला से मिला और उस पर मोहित हो गया। दुष्यन्त ने गुप्त रूप से आश्रम में शकुन्तला से विवाह कर लिया। कालान्तर में शकुन्तला ने एक बेटे को जन्म दिया, जिसका नाम भरत रखा गया। वह बहुत सुन्दर और बलशाली था, जो बचपन में भी किसी देवता का पुत्र लगता था। जब वह केवल छ: वर्ष का था, तो वह बाघ, सिंह और हाथी जैसे जंगली जानवरों के बच्चों को बाँधकर वन में खेला करता था।

दुष्यन्त की मृत्यु के बाद भरत राजा बना। भरत देश का सबसे महान् राजा था। आज भी हम हिन्दुस्तान को भारतवर्ष - राजा भरत का देश - के नाम से पुकारते हैं। राजा भरत के नौ बेटे थे, किन्तु उनमें से कोई भी ऐसा नहीं लगा जो उसके बाद राजा बनने के योग्य होता। इसलिए भरत ने एक योग्य बच्चे को गोद लिया, जिसने भरत के बाद राज्य सँभाला। इस प्रकार भरत ने प्रजातंत्र की नींव डाली।

भरत नाम के और भी कई शासक हुए हैं, जैसे भगवान् राम के अनुज भरत और महाराजा भरत। महाराज भरत की एक कथा इस प्रकार है :

ऋषिराज ऋषभदेव के बेटे भगवान् के भक्त महाराजा भरत ने भी हमारी सभी धरती पर शासन किया। उन्होंने बहुत समय तक राज्य किया, किन्तु अन्त में एक सन्यासी का आध्यात्मिक जीवन जीने के लिए सब कुछ त्याग दिया। यद्यपि भरत महान् राज्य का त्याग करने में समर्थ थे, किन्तु उन्हें एक शिशु हरिण के प्रति गहरा मोह पैदा हो गया। एक बार जब वह हरिण कहीं गायब हो गया, तो महाराजा भरत बहुत उद्विग्न हो गये और उसकी खोज करने लगे। हिरण की खोज करते हुए और उसकी अनुपस्थिति से शोक में डुबे महाराजा भरत गिर पड़े और मर गये। चूँकि मृत्यु के समय उनका मन पूरी तरह हिरण के ध्यान में डूबा हुआ था, उन्होंने स्वभावत: ही एक हिरणी के गर्भ से अगला जन्म लिया।

यही है आत्मा के आवागमन का सिद्धान्त, जिसमें हमारा विश्वास है। कुछ पश्चिमी दार्शनिक पुनर्जन्म में विश्वास करते हैं। यह पुनर्जन्म का सिद्धान्त इस मान्यता पर आधारित है कि मानव-आत्मा मनुष्यों के रूप में ही पुनर्जन्म लेती है, पशुओं के रूप में नहीं। आवागमन का सिद्धान्त पुनर्जन्म के सिद्धान्त से अधिक सार्वभौमिक लगता है।

जय : यदि जीवित प्राणी जन्म और मृत्यु के चक्र में लगे रहते हैं, तो सूरज, चाँद, धरती और दूसरे नक्षत्रों की क्या गति है? क्या उनका भी जन्म और क्षय होता है?

दादी माँ : सारी दृश्य सृष्टि का अपना जीवन-काल होता है। जो संसार हमें दिखाई देता है जैसे नक्षत्र और ग्रह, उनका जीवन काल 8.64 अरब वर्ष है। इस काल में सारे दिखाई देने वाले सौरमण्डल की सृष्टि और विनाश होना है (गीता 8.17-19)। किन्तु ब्रह्म अविनाशी है, शाश्वत है। उसका कभी क्षय नहीं होता।

जय : यदि कोई व्यक्ति मृत्यु के बाद इस संसार में वापिस नहीं लौटते, तो उनका क्या होता है? क्या वे स्वर्ग जाते हैं और सदा वहीं रहते हैं?

दादी माँ : जो मनुष्य इस धरती पर अच्छे कर्म करते हैं, वे स्वर्ग में जाते हैं, किन्तु स्वर्ग का सुख भोगकर उन्हें वापिस धरती पर आना पड़ता है (गीता 8.25, 9.21)। जो लोग दुर्जन और दुष्कर्मी रहे हैं, वे दण्डस्वरूप नरक में जाते हैं। वे भी धरती पर वापिस लौटते हैं। जिन मनुष्यों ने निर्वाण पा लिया है, वे फिर जन्म नहीं लेते। वे परमात्मा के साथ एकात्म हो जाते हैं और उसके परम-धाम को जाते हैं।

जय : हम परम-धाम कैसे प्राप्त कर सकते हैं?

दादी माँ : वे, जिन्होंने परमात्मा का सच्चा ज्ञान पा लिया है, ब्रह्म-ज्ञानी कहलाते हैं और परमधाम को जाते हैं। उनका पुनर्जन्म नहीं होता। इसे अनावर्त मार्ग कहा जाता है (गीता 8.24)। यह मार्ग उन अज्ञानी व्यक्तियों के लिए अवरूद्ध है, जो उपयुक्त गुणों - जैसे तप, भगवान् में विश्वास और ब्रह्म-ज्ञान आदि से वंचित हैं। केवल इन गुणों वाले व्यक्ति ही अनावर्त पथ का अनुसरण करते हैं। जो ब्रह्म-ज्ञानी नहीं है, किन्तु जिन्होंने अच्छे कर्म किये हैं, वे अपने अच्छे कर्मों के कारण स्वर्ग जाते हैं और पुन: धरती पर जन्म लेते हैं, जब तक कि वे पूर्णता को प्राप्त नहीं कर लेते और आत्म-ज्ञानी नहीं बन जाते। (गीता 8.25)

अध्याय आठ : सार - इस अध्याय में सामान्य संस्कृत शब्दों की व्याख्या की गई है, जो तुम बड़े होने पर अच्छी तरह समझ सकोगे। इसके साथ ही आवागमन और विश्व की सृष्टि और प्रलय को भी समझाया गया है। ब्रह्म-ज्ञान की प्राप्ति का सहज और आसान तरीका है - प्रभु को सदा याद रखना और अपना कर्त्तव्य करते रहना।

अध्याय नौ

राजविद्या - राजरहस्य

जय : यदि भगवान् पृथिवी पर कभी-कभी अवतरित होते हैं, तो क्या वे वैसे ही होंगे, जैसे हम या वे हमसे अलग होते हैं?

दादी माँ : अच्छा प्रश्न है, जय। इसका उत्तर दोनों प्रकार दिया जाता रहा है। उदाहरण के लिए, मेरी चेन, मेरी अँगूठी और इस सुनहरे सिक्के को देखो। ये सब सोने से बने हैं। तो तुम उन्हें सोने के रूप में देख सकते हो। और तुम हर दूसरी चीज़ को, जो सोने से बनी है, सोने के रूप में देख सकते हो। वे सोने का ही अलग-अलग रूप हैं। किन्तु तुम उन सबको अलग-अलग चीज़ों के रूप में भी देख सकते हो - एक चेन, एक अँगूठी, एक सिक्का। चेन, अँगूठी, सिक्का सोने के अलग-अलग शक्ल और रूप को छोड़कर कुछ भी नहीं हैं। इसी प्रकार हम भगवान् और उस सृष्टि को स्वयं भगवान् के विस्तार के रूप में ही देख सकते हैं और कुछ भी नहीं। इस दृष्टिकोण को अद्वैत-दर्शन जाना जाता है।

दूसरे दृष्टिकोण के अनुसार भगवान् एक तथ्य है और उसकी सृष्टि दूसरा अलग तथ्य है, किन्तु वह भगवान् पर निर्भर है। यह द्वैत दर्शन चेन, अँगूठी और सिक्का आदि सोने से बनी चीज़ों को सोने से अलग मानता है। (गीता 9.04-06)

जय : क्या यही वह बात है, जब लोग कहते हैं कि भगवान् सब जगह और सब चीज़ों में है?

दादी माँ : हाँ, जय। परमात्मा सूरज है, चाँद है, वायु है, आग, पेड़, धरती और पत्थर है - उसी तरह जैसे सोने से बनी हर चीज़ सोना है। इसीलिए हिन्दू पत्थर में और पेड़ में भगवान् को देखते और पूजते हैं, मानो वे ही उस रूप में स्वयं भगवान् हों।

जय : यदि प्रत्येक वस्तु भगवान् से आती है, तो हर वस्तु क्या पुन: भगवान् बन जायेगी, जैसे कि सोने की बनी हर वस्तु को पुन: बस सोने में पिघलाया जा सकता है।

दादी मॉं : हाँ, जय। सृष्टि और प्रलय का चक्र चलता ही रहता है। यह वैसा ही है जैसा मेरा अपनी चेन, अँगूठी और सोने के सिक्के को पुन: सोने में बदलना और फिर सोने का प्रयोग आभूषण और सिक्के बनाने में करना (गीता 9 : 07 - 08)। सारी सृष्टि बार-बार आती है और लोप हो जाती है।

जय : यदि भगवान् हम ही हैं और हम सब भगवान् से ही आते हैं, तब हर कोई भगवान् को प्यार क्यों नहीं करता, क्यों उनकी पूजा नहीं करता?

दादी माँ : वे, जो सत्य को समझते हैं, भगवान् की उपासना करते हैं। वे जानते हैं कि प्रभु हमारे स्वामी हैं और हमारी उत्पत्ति उन्हीं से व उन्हीं के लिए हुई है और हम उन्हीं पर निर्भर है। इसीलिए वे प्रभु को प्यार करते हैं और उनकी उपासना करते हैं। किन्तु अज्ञानी लोग नहीं समझते और न ही सर्वव्यापी भगवान् में विश्वास करते हैं।

जय : यदि मैं प्रतिदिन भगवान् की पूजा करूँ, उन्हें प्यार करूँ और उन्हें फल-फूल चढ़ाऊँ, तो क्या वे मुझसे प्रसन्न होंगे और मेरी पढ़ाई में सहायता करेंगे?

दादी माँ : भगवान् कृष्ण ने गीता में कहा है कि अपने सब भक्तों की, जो उनकी पूजा करते हैं - दृढ़ विश्वास और प्रेम भरी भक्ति के साथ - वे देखभाल करते हैं। (गीता **9.22**)

जय : क्या इसका ये अर्थ है कि भगवान् केवल उन्हें ही प्यार करते हैं, जो उनकी प्रार्थना और पूजा करते हैं?

दादी माँ : भगवान् हम सबको एक सा ही प्यार करते हैं, किन्तु यदि हम उनका स्मरण करते हैं और उनकी प्रार्थना करते हैं, तो हम भगवान् के समीप आते हैं। इसीलिए हम सबको उनका स्मरण करना चाहिये, उनकी उपासना करनी चाहिये, उनका ध्यान करते हुए श्रद्धा-भक्ति और प्रेम से उनके सम्मुख नत-मस्तक होना चाहिये।

जय : मैं भगवान् कृष्ण के समीप आना चाहूँगा, दादी माँ। मैं उनमें और अधिक आस्था कैसे रख सकता हूँ, कैसे उन्हें और अधिक प्यार कर सकता हूँ?

दादी माँ : उन सब अच्छी चीज़ों के बारे में विचार करो, जो भगवान् हमारे लिए करते हैं। वे हमें इतनी अलग-अलग खाने की चीज़ें देते हैं, जिनका सुख हम भोगते हैं। उन्होंने हमें उष्णता और प्रकाश के लिए सूरज दिया। चाँद-तारों और रात में बादलों से भरा सुन्दर आकाश देखो। ये सब उनकी सुन्दर सृष्टि है, तो फिर सोचो उनका सृष्टा स्वयं कितना सुन्दर होगा। प्रभु की उपासना उनकी कृपा के लिए उन्हें धन्यवाद देना है। प्रार्थना उन वस्तुओं का माँगना है, जो हमें भगवान् से चाहिये। और ध्यान-योग सर्व शक्तिमान् के साथ जुड़ना है - सहायता और मार्गदर्शन के लिए।

जय : जब भगवान् एक ही हैं, जो हमें सब कुछ देते हैं, तो दादी माँ, आप अपने पूजा-कक्ष में इतने देवी-देवताओं की प्रतिमाएँ क्यों रखती हैं? केवल एक भगवान् कृष्ण की उपासना ही क्यों नहीं करतीं?

दादी माँ : भगवान् कृष्ण ने कहा है, "वे, जो अन्य देवी-देवताओं की पूजा करते हैं, उन देवी-देवताओं के माध्यम से मुझे ही पूजते हैं।" (गीता **9.23**) हम किसी भी देवी-देवता की, जिसके साथ समीपता का अनुभव करते हैं, पूजा कर सकते हैं। वह हमारा इष्टदेवता है। अपना निजी देवता, जो हमारा व्यक्तिगत मार्गदर्शक और रक्षक हो जाता है।

जय : हम भगवान् को फल-फूल क्यों चढ़ाते हैं?

दादी माँ : भगवान् कृष्ण ने गीता में कहा है कि जो कोई भी उन्हें एक पत्र, एक पुष्प, एक फल, जल अथवा कोई भी वस्तु श्रद्धा-भक्ति से अर्पण करता है, वे न केवल उसे स्वीकार करते हैं, वरन् उसका भोग भी करते हैं (गीता **9.26**)। इसीलिए हम खाने से पहले प्रार्थना के साथ सदा अपना भोजन भगवान् को अर्पित करते हैं। भगवान् को अर्पण किया गया भोजन प्रसाद या प्रसादम् कहलाता है। कोई भी व्यक्ति भगवान् को प्राप्त कर सकता है, जो उनकी पूजा विश्वास, प्रेम और भक्ति के साथ करता है। भक्ति का यह मार्ग हम सबके लिए खुला है।

आस्था-विश्वास की शक्ति की एक कथा इस प्रकार है :

10. लड़का, जिसने भगवान् को खिलाया

एक कुलीन व्यक्ति भोजन अर्पण करके नित्य ही परिवार के इष्ट देवता की पूजा करता था। एक दिन उसे एक दिन के लिए अपने गाँव से बाहर जाना पड़ा। उसने अपने बेटे रमण से कहा, "देव प्रतिमा को भेंट अर्पित करना। ध्यान रहे, देवता को खिलाया जाये।"

लड़के ने प्रतिमा को भोजन अर्पित किया - पूजा घर में। किन्तु देव-प्रतिमा ने न कुछ खाया न पिया, न ही कोई बात की। रमण ने बहुत देर तक प्रतीक्षा की, परन्तु प्रतिमा तब भी न हिली। किन्तु उसका पक्का विश्वास था कि भगवान् अपने स्वर्ग-सिंहासन से उतर कर आयेंगे, फर्श पर बैठेंगे और भोग लगायेंगे।

उसने पुन:-पुन: देव-प्रतिमा की प्रार्थना की। उसने कहा, "हे प्रभु, कृपा करके धरती पर उतरो और भोग लगाओ। काफी देर हो चुकी है। मेरे पिता मुझसे बहुत नाराज़ होंगे यदि मैंने आपको नहीं खिलाया।" प्रतिमा ने एक शब्द भी न कहा।

लड़के ने रोना शुरू कर दिया। उसने ज़ोर से कहा, "हे पिता, मेरे पिता ने तुम्हें खिलाने को कहा था। तुम (धरती पर) आते क्यों नहीं? तुम मेरे हाथ से खाते क्यों नहीं?"

अपनी चाह भरी आत्मा के साथ लड़का कुछ समय रोता रहा। अन्त में देव-प्रतिमा मनुष्य के रूप में पूजा-स्थल से मुस्कुराते हुए उतरी, भोजन के सामने बैठी और भोग लगाया।

देव-प्रतिमा को खिलाकर लड़का पूजा-कक्ष से बाहर आया। उसके सम्बन्धियों ने कहा, "पूजा खत्म हुई। अब हमारे लिए प्रसाद लाओ।"

लड़के ने कहा, "भगवान् ने सब कुछ खा लिया। आज उन्होंने आप लोगों के लिए कुछ नहीं छोड़ा।"

सभी लोग पूजा-कक्ष में गये। वे यह देखकर कि सचमुच ही देव-प्रतिमा ने अर्पित किए हुए भोग को पूरा का पूरा खा लिया था, आश्चर्यचकित अवाक् रह गये।

इस कहानी से हमें यह शिक्षा मिलती है कि भगवान् निश्चय ही भोजन ग्रहण करेंगे, यदि तुम पूरी श्रद्धा से, प्रेम भक्ति से उन्हें भोजन अर्पित करो। हममें से अधिकांश लोगों में रमण जैसी आस्था नहीं, श्रद्धा नहीं। उन्हें खिलाना हम नहीं जानते। कहा गया है कि हमारी आस्था भगवान् में एक बच्चे जैसी होनी चाहिये, नहीं तो हम भगवान् के परम-धाम नहीं जा सकेंगे।

जय : दादी माँ, यदि कोई व्यक्ति पापी, चोर या डाकू है तो क्या वह भी भगवान् से प्यार कर सकता है?

दादी माँ : हाँ, जय। भगवान् कृष्ण ने गीता में कहा है - यदि पापी से पापी व्यक्ति भी प्रेम भरी भक्ति से मेरी पूजा करने का निश्चय करता है, तो वह व्यक्ति शीघ्र ही सन्त हो जाता है क्योंकि उसने सही निर्णय लिया है। (गीता 9.31) ऐसे डाकू के विषय में एक कथा इस प्रकार है :

11. महान् राहगीर - लुटेरा सन्त

हमारे दो लोकप्रिय महाकाव्य/ ऐतिहासिक कथाएँ हैं। एक रामायण, दूसरा महाभारत। भगवद्गीता महाभारत का एक भाग है। इसकी रचना ईसा-पूर्व 3,100 वर्ष में हुई। मूलत: रामायण की रचना नासा **(NASA)** की नई गवेषणा के अनुसार साढ़े सत्रह लाख वर्ष पहले हुई होगी। रामायण के मूल लेखक वाल्मीकि नाम के एक ऋषि थे। वाल्मीकि के बाद अन्य सन्त कवियों ने भी रामायण लिखी। भगवान् राम के जीवन पर आधारित इस महाकाव्य को बालकों को पढ़ना चाहिये। एक मिथक के अनुसार नारद महर्षि ने वाल्मीकि ऋषि को इस समस्त घटना को इसके वास्तव में घटने से पहले ही लिखने की शक्ति दी थी।

अपने जीवन के आरम्भिक काल में, वाल्मीकि राहगीरों को लूटने वाला डाकू था। वही उसकी जीविका थी। एक बार महान् देवर्षि नारद उस मार्ग से गुज़र रहे थे, वाल्मीकि ने उन पर आक्रमण करके उन्हें लूटने का प्रयत्न किया। देवर्षि नारद ने वाल्मीकि से पूछा वह ऐसा क्यों कर रहा था। वाल्मीकि ने उत्तर दिया कि ऐसा करके ही वह अपने परिवार का पोषण करता था।

देवर्षि ने वाल्मीकि से कहा, "जब तुम किसी को लूटते हो, तो तुम पाप कमाते हो। क्या तुम्हारे परिवार के सदस्य भी उस पाप का भागी होना चाहते हैं?"

डाकू ने उत्तर दिया, "क्यों नहीं? मेरा विश्वास है, वे अवश्य ही उसमें भागी होना चाहेंगे।"

देवर्षि ने कहा, "बहुत अच्छा, तुम घर जाओ और हर एक से पूछो कि वे तुम्हारे द्वारा घर लाये जाने वाले धन के साथ पाप के भी भागी होना चाहेंगे या नहीं?"

डाकू ने उनकी बात मान ली। उसने देवर्षि को एक पेड़ से बाँध दिया और अपने घर चला गया। वहाँ उसने परिवार के हर सदस्य से पूछा, "मैं लोगों को लूटकर तुम्हारे लिए धन और बहुत-सा भोजन लाता हूँ। एक सन्त ने कहा है कि लोगों को लूटना पाप है। क्या तुम उस पाप में मेरे भागीदार बनोगे?"

उसके परिवार का कोई भी सदस्य उसके पाप में भागीदार होने को तैयार न था उन सभी ने कहा, "हमारा पोषण करना तुम्हारा कर्त्तव्य है। हम तुम्हारे पाप में भागीदार नहीं बन सकते।"

वाल्मीकि को अपनी ग़लती का अहसास हुआ। उसने देवर्षि नारद से पूछा कि अपने पापों का प्रायश्चित करने के लिए वह क्या कर सकता था। देवर्षि ने वाल्मीकि को सर्व शक्तिमान् और सरलतम **"राम"** मंत्र जपने के लिए दिया। उसे पूजा करना और ध्यान-योग सिखाया। वन-डाकू ने अपने पाप का धन्धा छोड़ दिया और शीघ्र ही वह गुरु नारद की कृपा, मंत्र-शक्ति और अपने निष्ठा भरे आध्यात्मिक अभ्यास के कारण एक महान् ऋषि और कवि बन गया।

जय, एक और कथा है, जो तुम्हें सदा याद रखनी चाहिये। यह कथा गीता के उन श्लोकों को दर्शाती है, जो कहते हैं कि भगवान् हम सबका ध्यान रखता है। (गीता 9.17-18)

12. पदचिन्ह

एक रात एक व्यक्ति ने एक सपना देखा। उसने देखा कि वह भगवान् के साथ एक सागर-तट पर चल रहा था। आकाश के आर-पार उसने अपने जीवन के दृश्य देखे। हर दृश्य के साथ उसने रेत में दोहरे पदचिन्ह देखे, अपने और भगवान् के।

जब उसके जीवन का अंतिम दृश्य उसके सामने आया, तो उसने वापिस घूमकर रेत में पदचिन्हों को देखा। उसने देखा कि कई बार उसके जीवन के पथ पर केवल एक ही के पदचिन्ह थे। उसने यह भी पाया कि यह उसके जीवन के सबसे दुखद समय में ही हुआ, जब वह निम्नतम अवस्था में था।

इससे उसे बड़ी वेदना हुई। उसने भगवान् से इसके बारे में पूछा।

"भगवान्, आपने कहा था कि आपका न कोई प्रिय है न अप्रिय। किन्तु आप हमेशा उनके साथ हैं, जो आपकी उपासना करते हैं (गीता 9.29)। मैं देखता हूँ कि मेरे जीवन के सबसे बुरे समय में मार्ग में एक ही जोड़े के पदचिन्ह हैं। मेरी

समझ में नहीं आता कि जब मुझे आपकी सबसे ज़्यादा ज़रूरत थी, तब आपने मुझे अकेला क्यों छोड़ दिया?"

भगवान् ने उत्तर दिया, "मेरे प्यारे बच्चे, तुम मेरी अपनी आत्मा हो, तुम मेरे प्रिय हो और मैं तुम्हें कभी अकेला नहीं छोड़ूँगा, भले ही तुम मुझे छोड़ दो। तुम्हारी परीक्षा और वेदना की घड़ी में, जब तुम्हें केवल एक ही जोड़ा पदचिन्ह दिखाई देते हैं, तुम्हें ऐसा इसलिए लगा क्योंकि मैं तुम्हें उठाकर ले जा रहा था। जब तुम मुश्किल में होते हो, तो वह तुम्हारे अपने कर्म के कारण होता है। वह तभी होता है, जब तुम्हारी परीक्षा ली जाती है ताकि तुम और शक्तिशाली हो सको।"

भगवान् कृष्ण ने गीता में कहा है, "मैं उन भक्तों की, जो सदा मेरा स्मरण करते हैं, मुझे प्रेम करते हैं, स्वयं देखभाल करता हूँ।" (गीता **9.22**)

अध्याय नौ : सार - द्वैत-दर्शन भगवान् को एक तत्त्व के रूप में देखता है और सृष्टि को दूसरे - उस पर निर्भर अलग तत्त्व के रूप में। अद्वैत-दर्शन भगवान् और उसकी सृष्टि को एक ही देखता है। भगवान् हम सबको एक सा ही प्यार करते हैं, किन्तु वह अपने भक्तों में व्यक्तिगत रुचि लेते हैं, क्योंकि ऐसे व्यक्ति उनके अधिक समीप होते हैं। यह उसी प्रकार है जैसे, जो आग के समीप बैठता है, अधिक उष्णता पाता है। ऐसा कोई पाप या पापी नहीं, जो क्षमा योग्य न हो। सच्चे पश्चाताप की अग्नि सब पापों को जला देती है।

अध्याय दस

ब्रह्म -विभूति

जय : यदि भगवान् कृष्ण ने कहा है कि वे हमारी देखभाल करेंगे, यदि हम उनका स्मरण करें, तो मैं भगवान् को जानना और उनसे प्यार करना चाहूँगा। मैं ऐसा कैसे कर सकता हूँ, दादी माँ?

दादी माँ : भगवान् का प्यार भक्ति कहलाता है। यदि तुममें भगवान् की भक्ति है, तो वे तुम्हें अपने विषय में ज्ञान और समझ देंगे (गीता **10.10**)। जितना अधिक तुम भगवान् की महिमा, शक्ति और महानता को जानोगे और उनका चिन्तन करोगे, उतना ही सशक्त भगवान् के प्रति तुम्हारा प्यार होगा। इस प्रकार ज्ञान और भक्ति साथ-साथ चलते हैं।

जय : भगवान् तो इतने महान् और शक्तिशाली हैं, मैं उनको सत्य में कैसे जान सकता हूँ?

दादी माँ : भगवान् को पूरी तरह तो कोई भी नहीं जान सकता। वह सौरमण्डल की ऊर्जा और शक्ति का मूल कारण है, ऐसा कारण, जो महान् रहस्य ही रहेगा। भगवान् अजन्मा, अनादि और अनन्त है। भगवान् को केवल भगवान् ही सत्यत: जान सकता है (गीता **10.15**)। यदि कोई कहता है, मैं परमात्मा को जानता हूँ, तो वह व्यक्ति नहीं जानता। जो भी सत्य को जानता है, वह कहता है : "मैं भगवान् को नहीं जानता।"

जय : तब हम भगवान् के बारे में क्या जान सकते हैं, दादी माँ?

दादी माँ : भगवान् सब कुछ जानते हैं, किन्तु भगवान् को कोई नहीं जान सकता। शंकर के अनुसार, सारी सृष्टि कुछ नहीं है, भगवान् के दूसरे रूप को छोड़कर। सृष्टि भगवान् की ऊर्जा, जिसे माया कहते हैं, से उत्पन्न हुई है। सब कुछ उसी से आता है, और अन्त में वापिस उसी में जाता है। भगवान् एक है, जो अनेक बन जाता है। वह सब जगह है और सब वस्तुओं में है। (गीता **10.19-39**)

वह सब प्राणियों का सृष्टिकर्त्ता, पोषक, पालक और संहारक है। वह सब वस्तुओं की सृष्टि करता है - सूर्य की, चन्द्रमा की, नक्षत्रों, वायु, जल, अग्नि की, यहाँ तक कि हमारे विचारों, भावनाओं, बुद्धि और अन्य गुणों की भी। सारी सृष्टि में हम उसकी महिमा और महानता के दर्शन कर सकते हैं। यह सूर्य, जो तुम पृथिवी और सब नक्षत्रों के साथ देखते हो, उनकी महिमा का छोटा-सा अंश मात्र है। सब जगह भगवान् को देखना हमारे मन को पवित्र बनाता है और हमें अच्छा व्यक्ति बनाता है।

एक कथा है, जो दर्शाती है कि हम भगवान् के विषय में कितना कम जानते हैं। (गीता **10.15**)

13. चार अन्धे आदमी

चार अन्धे आदमी एक हाथी को देखने गये।

एक ने हाथी के पैर को छुआ और कहा, "हाथी एक खम्भे की भाँति है।"

दूसरे ने उसकी सूँड को छुआ और कहा, "हाथी एक मोटी लाठी की तरह है।"

तीसरे ने उसके पेट को छुआ और कहा, "हाथी एक विशाल घड़े की भाँति है।"

चौथे ने उसके कानों को छुआ और कहा, "हाथी एक बड़े हाथ के पंखे जैसा है।"

इस प्रकार वे आपस में हाथी की शक्ल को लेकर लड़ने लगे।

एक व्यक्ति ने, जो उधर से गुज़र रहा था, उन्हें इस प्रकार लड़ते देखकर पूछा, "तुम सब क्यों लड़ रहे हो?"

उन्होंने अपनी समस्या उस व्यक्ति को बताई और उसे निर्णय देने को कहा।

उस व्यक्ति ने कहा, "तुम में से किसी ने भी हाथी को देखा नहीं। हाथी खम्भे की तरह नहीं है। इसके पैर खम्भे की तरह हैं। यह मोटी लाठी जैसा नहीं है, इसकी सूँड मोटी लाठी जैसी है। यह बड़े घड़े जैसा नहीं है, इसका पेट बड़े घड़े जैसा है। यह पंखे की तरह भी नहीं है, इसके कान पंखे की तरह हैं। हाथी यह सब है - पैर, सूँड, पेट, कान और उनसे भी अधिक और बहुत कुछ।"

इसी प्रकार, जो भगवान् की प्रकृति के बारे में वाद-विवाद करते हैं, वे उसकी वास्तविकता के केवल बहुत छोटे अंश को ही जानते हैं। इसीलिए ऋषियों ने **'नेति-नेति'** कहा है अर्थात् भगवान् न यह है, न वह।

जय : जिन लोगों का परमात्मा में विश्वास नहीं है, उनके बारे में आप क्या कहेंगीं?

दादी माँ : ऐसे लोगों को नास्तिक कहा जाता है। वे किसी सृष्टा के अस्तित्त्व में विश्वास नहीं करते क्योंकि उनकी समझ में नहीं आ सकता कि ऐसा वैश्विक पुरुष या शक्ति कैसे हो सकती है। इसलिए वे भगवान् की सत्ता के विषय में प्रश्न करते हैं, संदेह करते हैं। किसी दिन उनके संदेहों का निराकरण हो जायेगा, जब भगवान् की कृपा से उन्हें कोई सच्चा आध्यात्मिक गुरु मिल जायेगा। नास्तिक लोग वे हैं, जिनकी भगवान् की दिशा में यात्रा अभी शुरू ही नहीं हुई है। संदेह तो आस्तिकों के मनों में भी उठते हैं, अत: आस्था रखो, भगवान् में विश्वास करो और अपना कर्त्तव्य करते रहो।

अध्याय दस : सार - भगवान् को, परमात्मा को कोई नहीं जान सकता क्योंकि वह सब प्राणियों का मूल है, सब कारणों का कारण है। हर वस्तु - हमारे शरीर, मन, विचारों और भावनाओं सहित, भगवान् से ही आती है। वह सृष्टा है, पालक है और सबका संहारक है। वह अनन्त है, अनादि है, अविनाशी है। सारा विश्व उसी की ऊर्जा के छोटे से अंश का विस्तार है (गीता **10. 41-42**)। सभी देवी-देवता उसकी विभिन्न शक्तियों के नाम मात्र हैं। किसी भी नाम, रूप और तरीके के साथ आस्थापूर्वक भगवान् की पूजा करना हमें मनोवांछित फल देता है और हमें अच्छा और शान्त बनने में सहायक होता है।

अध्याय ग्यारह

भगवान् का दर्शन

जय : दादी माँ, आपने कहा है, हम भगवान् के बारे में बहुत कम जान सकते हैं। तब क्या भगवान् के दर्शन करना लोगों के लिए सम्भव है?

दादी माँ : हाँ, जय। किन्तु हमारी भौतिक आँखों से नहीं। जिसका प्रकार हमारी दुनिया में हमारे हाथ-पैर हैं, वैसे तो भगवान् के हैं नहीं। किन्तु जब भगवान् हमारी नि:स्वार्थ सेवा-भक्ति से प्रसन्न होते हैं, तो वे हमें स्वप्न में दर्शन दे सकते हैं। वे किसी भी रूप में दिखाई दे सकते हैं या हमारे इष्टदेवता के रूप में।

जय : क्या भगवान् के दर्शन का कोई दूसरा मार्ग भी है?

दादी माँ : भगवान् के दर्शन का सर्वश्रेष्ठ मार्ग है - हर वस्तु में उनकी उपस्थिति को अनुभव करना क्योंकि हर वस्तु भगवान् का अंश है। योगी लोग सारे संसार को भगवान् के विस्तार के रूप में देखते हैं। हर चीज़ भगवान् का ही दूसरा रूप है। यह जानकर हम अपने चारों ओर भगवान् के दर्शन कर सकते हैं। सारा विश्व भगवान् है और हम उसके बच्चे हैं, साधन-उपकरण हैं (गीता **11.33**)। भगवान् हमारा उपयोग अपने काम के लिए करते हैं। वे हम सब में हैं।

एक कथा है, जो दर्शाती है कि भगवान् हमारे साथ हर समय हैं, किन्तु हम उन्हें अपनी आँखों से नहीं देख सकते। (गीता **11.08**)

14 . भगवान् तुम्हारे साथ हैं

एक आदमी धूम्रपान करना चाहता था। वह अपने कोयलों को जलाने के लिए पड़ौसी के घर आग लेने गया। यह गहरी रात का समय था। पड़ौसी गृहस्थ सोया हुआ था। लगातार देर तक दस्तक देने पर पड़ौसी अन्त में जागा, नीचे आकर उसने दरवाज़ा खोला।

उस आदमी को देखकर पड़ौसी ने कहा, "नमस्ते, क्या मामला है?"

आदमी ने उत्तर दिया, "क्या तुम अनुमान नहीं लगा सकते? तुम तो जानते हो, मुझे धूम्रपान का शौक़ है। मैं यहाँ अपने कोयले जलाने के लिए आग लेने आया हूँ।"

पड़ौसी ने कहा, "हा, हा, हा। क्या ही बढ़िया पड़ौसी हो तुम। तुमने इसी के लिए आधी गहरी रात में यहाँ आने और इतनी दस्तक देने का कष्ट किया। क्यों? तुम्हारे पास तो पहले ही जलती हुई लालटेन है।"

हम जिसकी खोज कर रहे हैं, वह तो हमारे पास में है, हमारे चारों ओर है। हर चीज़ अलग रूप में भगवान् है। सृष्टि में हर चीज़ उसके विशाल रूप के भीतर है।

भगवान् के दर्शन का दूसरा मार्ग है भक्ति और अच्छे गुणों का विकास करना। भगवान् कृष्ण ने कहा है, यदि हमें मोह, स्वार्थपूर्ण इच्छाएँ, घृणा, दुश्मनी या किसी के प्रति हिंसा का भाव नहीं है, तो

हम भगवान् की प्राप्ति और उनके दर्शन कर सकते हैं। (गीता 11.15)

जय : क्या किसी ने कृष्ण को भगवान् के रूप में देखा है?

दादी माँ : हाँ, बहुत से सन्तों ने, ऋषियों ने भगवान् कृष्ण को विभिन्न रूपों में देखा है। माता यशोदा ने कृष्ण का दिव्य रूप देखा। अर्जुन ने भी कृष्ण को भगवान् के रूप में देखना चाहा। चूँकि अर्जुन एक महान् आत्मा और कृष्ण का बहुत प्रिय मित्र था, भगवान् कृष्ण ने उसे अपने दिव्य रूप में दर्शन दिये। जो अर्जुन ने देखा, गीता के ग्यारहवें अध्याय में उसका वर्णन किया गया है। अर्जुन के द्वारा देखे गये भगवान् के दिव्य रूप का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है : उसने सारे देवी-देवताओं, सन्तों, ऋषियों, भगवान् शिव, ब्रह्मा के साथ समस्त विश्व को कमल-पत्र में बैठे हुए भगवान् कृष्ण के शरीर में देखा। भगवान् के असंख्य हाथ, मुख, पेट, चेहरे और नयन थे। उनके शरीर का न कोई आदि था न अन्त। उनके चारों ओर दिव्य ज्योति प्रभासित थी। अर्जुन ने अपने भाइयों (कौरवों) के साथ अनेक राजाओं, योद्धाओं को भी विनाश के लिए तीव्र गति से भगवान् के भयावह मुख में प्रवेश करते देखा। भगवान् कृष्ण का यह दिव्य रूप देखने में अत्यन्त भयानक था, इसलिए अर्जुन ने भगवान् कृष्ण के दर्शन शीर्ष-मुकुट मण्डित, हाथों में शंख, चक्र, गदा और कमल लिए चतुर्भज विष्णु के रूप में करने चाहे। भगवान् कृष्ण ने तब अपने चतुर्भुज विष्णु रूप में अर्जुन को अपने दर्शन दिये।

उसके बाद कृष्ण ने भयभीत अर्जुन को अपने सुन्दर मानवीय रूप में दर्शन देकर आश्वस्त किया। उन्हें इस रूप में देखकर अर्जुन पुन: शान्त और सहज हो गया। भगवान् कृष्ण ने कहा है कि वे अपने इस चतुर्भुज रूप में केवल भक्ति द्वारा ही देखे जा सकते हैं। (गीता 11.54)

अध्याय ग्यारह : सार - हम भगवान् के दर्शन इन मनुष्य-नेत्रों से नहीं कर सकते।हम उनके दर्शन केवल स्वप्न या समाधि में कर सकते हैं। हम उन्हें अपने चारों ओर देख सकते हैं। सारी सृष्टि सृष्टा के शरीर को छोड़कर कुछ नहीं है और हम भगवान् के दिव्य रूप के अंश हैं।

अध्याय बारह

भक्तियोग

जय : दादी माँ, क्या हमें प्रतिदिन पूजा या ध्यान करना चाहिये, या केवल रविवार को ही?

दादी माँ : बच्चों को किसी न किसी रूप में प्रतिदिन पूजा, प्रार्थना या ध्यान करना चाहिये। अच्छी आदतों को जल्दी ही बनाना चाहिये।

जय : आपने कहा कि भगवान् निराकार है, पर साकार भी है। तो क्या मुझे भगवान् की पूजा राम, कृष्ण, दुर्गा, शिव के रूप में करनी चाहिये या उनके निराकार रूप की?

दादी माँ : अर्जुन ने यही प्रश्न गीता में भगवान् कृष्ण से किया है (गीता 12.01)। कृष्ण ने अर्जुन से कहा है कि भगवान् के साकार रूप की पूजा निष्ठा के साथ करना अधिकांश लोगों के लिए, विशेषकर उनके लिए जिन्होंने भक्ति-मार्ग में अभी पैर ही रखा है, सुगम और बेहतर है। किन्तु एक सच्चे भक्त की आस्था हर चीज़ में है - भगवान् के निराकार रूप में भी और उनके राम, कृष्ण, हनुमान, शिव, दिव्यरूपा माँ काली, दुर्गा आदि साकार रूप में भी।

जय : दादी माँ, मुझे पूजा किस प्रकार करनी चाहिये?

दादी माँ : स्कूल जाने से पहले पूजा या ध्यान-कक्ष में जाकर पूजा करो। सीधे बैठो, अपनी आँखें बन्द करो, कुछ साँस धीरे से और गहरे लो। अपने इष्टदेवता का स्मरण करो और उनसे आशीर्वाद माँगो। आँखें बन्द करके अपने इष्टदेवता पर मन को केन्द्रित करना ध्यान योग कहलाता है। तुम मन-मन में दोहराते हुए ओम्, राम- राम- राम- राम आदि मंत्र का जाप भी कर सकते हो।

जय : जब मैं ध्यानमग्न होने का प्रयत्न करता हूँ, तो मैं मन को लगा ही नहीं पाता, दादी माँ। मेरा मन सब जगह भागने लगता है। मुझे क्या करना चाहिये?

दादी माँ : चिन्ता मत करो। यह तो बड़ों-बड़ों के साथ भी होता है। बार-बार मन लगाने की, केन्द्रित करने की कोशिश करो। अभ्यास से तुम अपने मन को अच्छी प्रकार केन्द्रित करने में सफल हो जाओगे, न केवल भगवान् में, बल्कि अपनी पढ़ाई के विषयों में भी। यह तुम्हें अच्छे अंक पाने में सहायक होगा। तुम प्रेमसहित अपने इष्टदेवता को फल-फूल आदि अर्पित करके भी भगवान् की प्रार्थना-पूजा कर सकते हो और हाँ, अपनी पढ़ाई शुरू करने से पहले भगवान् गणेश, हनुमान अथवा माँ सरस्वती आदि ज्ञान के देवी-देवता का भी स्मरण करो। स्वार्थी न बनो। परिश्रम करो। और बुरे परिणाम के आने पर दु:खी न होकर अपने काम के फल को स्वीकार करो। अपनी असफलताओं से सीखने का प्रयत्न करो। कभी हार न मानो और अपने में निरन्तर सुधार करते रहो।

जय : बस इतना सब ही मुझे करना है, दादी माँ? क्या भगवान् ने और भी कुछ कहा है?

दादी माँ : तुम्हें अच्छी आदतें भी डालनी चाहिये। जैसे माँ-बाप की आज्ञाओं का पालन, ज़रूरत पड़ने पर दूसरों की सहायता करना, किसी को दुःख न पहुँचाना, सबके साथ मित्रता का व्यवहार करना, किसी को ग़लती से दुःख पहुँचाने पर खेद प्रकट करना अथवा क्षमा माँगना, मन को शान्त रखना, उनके प्रति कृतज्ञ होना और उन्हें धन्यवाद देना, जिन्होंने तुम्हारी सहायता की हो। ऐसे ही लोगों को भक्त कहा गया है (गीता 12.13-19)। यदि तुममें इन अच्छी आदतों में से किसी की कमी है तो उसे अपनाने की कोशिश करो। (गीता 12.20)

जय : क्या बच्चे के लिए भक्त होना सम्भव है?

दादी माँ : मैंने तुम्हें पहले ही ध्रुव की कहानी सुनाई है। अब मैं तुम्हें एक और भक्त की कहानी सुनाऊँगी। उसका नाम प्रह्लाद था।

15. भक्त प्रह्लाद की कथा

हिरण्यकश्यप दानवों का एक राजा था। उसने भयंकर तपस्या की थी। ब्रह्मा देवता ने उसे प्रसन्न होकर एक वरदान दिया था कि उसे न मनुष्य मार सकेगा, न पशु। वरदान पाकर वह बहुत घमण्डी हो गया। उसने तीनों लोकों में आतंक फैला दिया। उसने घोषणा करा दी कि उसको छोड़कर अेर कोई ईश्वर नहीं है और हर एक को उसी की पूजा करनी पड़ेगी।

उसका प्रह्लाद नाम का एक बेटा था। वह एक धार्मिक बच्चा था, जो भगवान् विष्णु की उपासना करता था। इससे उसके पिता को बहुत क्रोध आता था। वह बेटे प्रह्लाद के मन से भगवान् विष्णु का ध्यान पूरी तरह निकाल देना चाहता था। इसलिए उसने प्रह्लाद को एक सख़्त अध्यापक को सौंप दिया, जो उसे केवल हिरण्यकश्यप की पूजा करने का शिक्षण दे, विष्णु की पूजा का नहीं।

प्रह्लाद ने न केवल शिक्षक की बातों को सुनने से इंकार कर दिया, बल्कि वह दूसरे बच्चों को भी विष्णु की पूजा करने की शिक्षा देने लगा। इससे शिक्षक को बहुत क्रोध आया और उसने राजा से इसकी शिकायत की।

राजा अपने बेटे के कमरे में धड़धड़ाता हुआ आया। वह चिल्लाया, "मैंने सुना है, तुम विष्णु की पूजा करते हो।"

प्रह्लाद ने काँपते हुए धीरे से कहा, "हाँ पिताजी, मैं विष्णु की पूजा करता हूँ।"

"वचन दो कि तुम आगे ऐसा नहीं करोगे," राजा ने माँग की।

"मैं वचन नहीं दे सकता," प्रह्लाद ने तुरन्त उत्तर दिया।

"तब तो मुझे तुम्हें मरवाना पड़ेगा," राजा चीखा।

"ऐसा तब तक नहीं होगा, जब तक भगवान् विष्णु की इच्छा नहीं होगी," बालक ने उत्तर दिया।

राजा ने प्रह्लाद का मन बदलने की पूरी कोशिश की, परन्तु वह ऐसा करने में हर प्रकार असफल रहा।

तब राजा ने अपने रक्षकों को प्रह्लाद को महासागर में फेंकने का आदेश दिया। उसे आशा थी कि ऐसा करने से प्रह्लाद डरकर फिर कभी विष्णु की उपासना न करने का वचन देगा। किन्तु प्रह्लाद विष्णु के प्रति निष्ठ रहा और अपने हृदय में प्रेम और भक्ति से विष्णु की प्रार्थना करता रहा। रक्षकों ने उसे भारी शिला से बाँधकर महासागर में फेंक दिया। भगवान् की कृपा से शिला अलग जाकर गिर पड़ी और प्रह्लाद सुरक्षित जल की सतह पर तैरता रहा। उसे सागर-तट पर भगवान् विष्णु को देखकर बहुत आश्चर्य हुआ।

भगवान् विष्णु ने मुस्कुराते हुए उससे कहा, "जिस चीज़ की भी इच्छा हो, मुझसे माँग लो।"

प्रह्लाद ने उत्तर दिया, "मैं राज्य, धन, स्वर्ग या दीर्घ जीवन नहीं चाहता। मैं केवल इतनी शक्ति चाहता हूँ कि हमेशा तुम्हें प्यार करता रहूँ और मेरा मन कभी भी तुमसे अलग न हो।"

भगवान् विष्णु ने प्रह्लाद की इच्छा पूरी की।

जब प्रह्लाद अपने पिता के महल में वापिस आया, तो राजा उसे जीवित देखकर अवाक् रह गया।

"तुम्हें सागर से बाहर निकालकर कौन लाया?" राजा ने पूछा।

"भगवान् विष्णु," बालक ने सहज भाव से कहा।

"मेरे सामने उसका नाम न लो," हिरण्यकश्यप चिल्लाया। "कहाँ है तुम्हारा भगवान् विष्णु? उसे मुझे दिखाओ।" उसने चुनौती दी।

"वह तो सब जगह है," बालक ने उत्तर दिया।

"क्या इस खम्भे में भी है?" राजा ने पूछा।

"हाँ, इस खम्भे में भी," प्रह्लाद ने पूरे विश्वास से उत्तर दिया।

"तो वह मेरे सामने जिस भी रूप में वह प्रकट होना चाहे, आये," हिरण्यकश्यप चिल्लाया और उसने लोहे की गदा से खम्भे को तोड़ दिया।

तभी खम्भे से नृसिंह नाम का जीव कूदकर बाहर निकला। वह आधा पुरुष था और आधा मनुष्य। हिरण्यकश्यप उसके सामने बेबस खड़ा रहा। उसने भयभीत होकर सहायता के लिए पुकार की, किन्तु कोई उसकी सहायता के लिए नहीं आया।

नृसिंह ने हिरण्यकश्यप को उठाया और अपनी गोद में रखा। वहाँ उसने हिरण्यकश्यप के शरीर पर जोर से प्रहार किया और चीर डाला। इस प्रकार हिरण्यकश्यप अपनी मृत्यु को प्राप्त हुआ।

भगवान् ने प्रह्लाद को प्रभु में गहन विश्वास रखने के लिए आशीर्वाद दिया। हिरण्यकश्यप की मृत्यु के बाद दानवों का दमन हुआ और देवताओं ने पुन: दानवों से पृथिवी छीनकर उस पर अधिकार कर लिया। आज तक प्रह्लाद का नाम महान् भक्तों में गिना जाता है।

अध्याय बारह : सार - भगवान् के प्रति भक्ति के मार्ग पर चलना अत्यन्त सरल है। इस मार्ग के अंश हैं : देवी-देवता की दैनिक उपासना, भगवान् को फल-फूल अर्पित करना, भगवान् की महिमा की कीर्ति में भजन गाना और कुछ अच्छी आदतें डालना।

अध्याय तेरह

सृष्टि और सृष्टा

जय : दादी माँ, मैं खा सकता हूँ, सो सकता हूँ, सोच सकता हूँ, बात कर सकता हूँ, चल सकता हूँ, दौड़ सकता हूँ, काम कर सकता हूँ और पढ़ सकता हूँ। मेरे शरीर को यह सब करने का ज्ञान कहाँ से/ कैसे आता है?

दादी माँ : हमारे शरीर सहित सारा विश्व पाँच मूल तत्त्वों से बना है। वे तत्त्व हैं - पृथिवी, जल, अग्नि, वायु और आकाश। आकाश अदृश्य तत्त्व है। हमारी ग्यारह इन्द्रियाँ हैं। पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ (नाक, जीभ, आँख, त्वचा और कान), पाँच कर्मेन्द्रियाँ (मुख, हाथ, पैर, गुदा और मूत्रेन्द्रिय) तथा मन। नाक से हम सूँघते हैं, जीभ से स्वाद चखते हैं, आँखों से देखते हैं, त्वचा से स्पर्श का अनुभव करते हैं और कानों से सुनते हैं। हमारी अनुभूति की भी एक इन्द्रिय है जिससे हम सुख-दु:ख का अनुभव करते हैं। ये सारी इन्द्रियाँ हमारे शरीर को वह सब देती हैं, जो शरीर को काम करने के लिए चाहिये (गीता 13.05-06)। हमारे भीतर की आत्मा को प्राण भी कहा जाता है। वह शरीर को सब काम करने की शक्ति देता है। जब प्राण शरीर को छोड़ देते हैं, तो हम मर जाते हैं।

जय : आपने कहा है कि भगवान् विश्व के सृष्टा हैं। हमें कैसे ज्ञात है कि सृष्टा हैं या भगवान् हैं?

दादी माँ : किसी भी सृष्टि के पीछे कोई सृष्टा तो होगा ही, जय। जो कार हम चलाते हैं और जिस घर में हम रहते हैं, उनके किसी व्यक्ति या शक्ति ने तो बनाया ही है। किसी व्यक्ति या शक्ति ने सूर्य, पृथिवी, चन्द्रमा और तारों को बनाया है। हम उस व्यक्ति या शक्ति को भगवान् या विश्व का सृष्टा कहते हैं।

जय : यदि हर वस्तु का कोई सृष्टा है, तो भगवान् को किसने बनाया?

दादी माँ : यह तो बहुत अच्छा प्रश्न है जय, पर इसका कोई उत्तर नहीं। परमात्मा हमेशा थे और हमेशा रहेंगे। भगवान् सब वस्तुओं का मूल है, उद्गम है, पर भगवान् का कोई उद्गम नहीं, मूल नहीं महाप्रभु सब वस्तुओं के स्रोत हैं, पर उनका कोई स्रोत नहीं।

जय : तब भगवान् का स्वरूप कैसा है, दादी माँ? क्या आप उनका वर्णन कर सकती हैं?

दादी माँ : भगवान् का यथार्थ वर्णन तो असम्भव है। परमात्मा का वर्णन केवल दृष्टान्त-कथाओं द्वारा ही किया जा सकता है - अन्य किसी प्रकार नहीं। उनके हाथ, पैर, आँखें, शीश, मुख और कान सभी जगह हैं। वे विना किसी भौतिक इन्द्रियों के देख सकते हैं, अनुभव कर सकते हैं और आनन्द कर सकते हैं। उनका शरीर हमारे शरीर जैसा नहीं है। उनका शरीर, उनकी इन्द्रियाँ इस लोक से परे हैं। वे बिना पैर के चलते हैं, बिना कानों के सुनते हैं, वे सब काम बिना हाथों के करते हैं, बिना नाक से सूँघते हैं, बिना आँखों के देखते हैं, बिना मुख के बोलते हैं, बिना जीभ के सब स्वादों का आनन्द लेते हैं। उनके कर्म अलौकिक हैं। उनकी महिमा वर्णन से परे है। परमात्मा हर जगह, हर समय विद्यमान हैं, अत: वे बहुत पास हैं (हमारे हृदय में रहते हैं) और दूर हैं, अपने परम धाम में। वे सृष्टा रूप में ब्रह्मा हैं, पोषक रूप में विष्णु हैं और विनाशक रूप में शिव हैं। एक में ही सब। (गीता 13.13-16)

इस बात को दर्शाने के लिए कि भगवान् का वर्णन कोई भी क्यों नहीं कर सकता (गीता 13.12-18) नमक की गुड़िया की कथा सर्वश्रेष्ठ तरीका है।

16 . नमक की गुड़िया

एक बार नमक की एक गुड़िया समुद्र की गहराई नापने गई ताकि वह दूसरों को बता सके कि समुद्र कितना गहरा है। किन्तु हर बार जब वह पानी में गई, वह पिघल / घुल गई। तो कोई भी सूचित न कर सका कि समुद्र की गहराई कितनी है। तो इसी प्रकार किसी के लिए भी भगवान् का वर्णन करना असम्भव है, जब भी हम प्रयत्न करते हैं, हम उनके यथार्थ के रहस्यमय महान् महासागर में घुल जाते हैं।

हम ब्रह्म का वर्णन नहीं कर सकते। समाधि में हम ब्रह्म को जान सकते हैं, किन्तु समाधि में तर्क-शक्ति और बुद्धि पूरी तरह लोप हो जाती है। इसका अर्थ है कि समाधि में हुए अनुभव का स्मरण व्यक्ति नहीं रख पाता। जो ब्रह्म को जानता है, वह ब्रह्म जैसा ही हो जाता है (गीता 18.55)। वह बोलता नहीं है, वैसे ही जैसे नमक की गुड़िया महासागर में घुल जाती है और वह महासागर की गहराई की जानकारी नहीं दे सकती। जो परमात्मा के वारे में बात करते हैं, उन्हें परमात्मा के विषय में कोई वास्तविक अनुभव नहीं होता। इस प्रकार ब्रह्म की केवल अनुभूति ही हो सकती है, उन्हें महसूस ही किया जा सकता है।

जय : फिर हम भगवान् को कैसे जान सकते हैं, कैसे समझ सकते हैं?

दादी माँ : मन और बुद्धि से तुम भगवान् को नहीं जान सकते। वे केवल आस्था और विश्वास से जाने जा सकते हैं। वे आत्म-ज्ञान के द्वारा भी जाने जा सकते हैं। एक ही और वही परमात्मा सब जीवों में आत्मा के रूप में रहते हैं और हमारा पोषण करते हैं। इसीलिये हमें किसी को दु:ख नहीं पहुँचाना चाहिये और सबके साथ समान व्यवहार करना चाहिये (गीता 13.28)। दूसरों को दु:ख पहुँचाना, अपनी ही आत्मा को दुखाना है। शरीर के भीतर आत्मा गवाह है, मार्गदर्शक है, सहायक है, भोक्ता है और सब घटनाओं का नियन्ता है। (गीता 13.22)

जय : ब्रह्म या सृष्टा और उसकी सृष्टि में क्या अन्तर है?

दादी माँ : अद्वैत दर्शन के अनुसार तो उन दोनों में कोई अन्तर नहीं। सृष्टा और सृष्टि के बीच का अन्तर वैसा ही है जैसा सूर्य और उसकी किरणों के बीच का अन्तर। जिन्हें आत्म-ज्ञान है, वे ही सत्य रूप में सृष्टा और सृष्टि के बीच का अन्तर समझ सकते हैं और वे ब्रह्म-ज्ञानी हो जाते हैं (गीता 13.34) सारा विश्व भगवान् का ही विस्तार है और सब कुछ उसके अतिरिक्त कुछ नहीं है। परमात्मा ही दोनों, सृष्टा और सृष्टि है, पोषक और पोषित है, संहारक है और नष्ट है। वह हम में है, हमारे वाहर है, पास है, दूर है और सब जगह है।

यदि भगवान् का आशीर्वाद तुम्हें मिलता है, तो वे तुम्हें जनवा देंगे कि तुम वास्तव में कौन हो और तुम्हारी वास्तविक प्रकृति कैसी है।

एक कथा है जो दर्शाती है कि परमात्मा कैसे एक जीव बन जाता है, अपनी वास्तविक प्रकृति भूल जाता है और अपनी वास्तविक प्रकृति को खोजने का प्रयत्न करता है। (गीता 13.21)

17 . शाकाहारी बाघ

एक वार एक बाघिन ने भेड़ों के एक झुण्ड पर आक्रमण किया। बाघिन गर्भवती थी और कमज़ोर थी। जैसे ही वह अपने शिकार पर झपटी, उसने एक शिशु बाघ को जन्म दिया। जन्म देने के दो घण्टे बाद ही वह मर गई। शिशु बाघ मेमनों की संगति में बड़ा हुआ। मेमने घास खाते थे, इसलिए शिशु बाघ भी उनका अनुसरण करने लगा। जव मेमनों ने शोर किया, आवाज़ें निकालीं, तो शिशु बाघ भी भेड़ों की तरह ही आवाज़ करने लगा। धीरे-धीरे वह एक बड़ा बाघ हो गया। एक दिन एक दूसरे बाघ ने भेड़ों के उस झुण्ड पर आक्रमण किया। उस बाघ को भेड़ों के झुण्ड में घास खाने वाले एक बाघ को देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ। जंगली बाघ उसके पीछे भागा और अन्त में उस बाघ के बच्चे को पकड़ ही लिया और घास खाने वाले बाघ के बच्चे ने एक मेमने की तरह आवाज़ निकाली।

जंगली बाघ उसे घसीटकर पानी के समीप ले गया और उससे बोला, "पानी में अपना चेहरा देखो। वह मेरे चेहरे जैसा है। यहाँ माँस का एक टुकड़ा है। इसे खाओ।"

ऐसा कहकर जंगली बाघ ने शाकाहारी बाघ के मुँह में माँस का टुकड़ा रख दिया। किन्तु शाकाहारी बाघ उसे खा नहीं रहा था और वह फिर भेड़ की तरह की आवाज़ करने लगा। किन्तु धीरे-धीरे उसे खून के स्वाद का चस्का लग गया और उसे माँस पसन्द आने लगा।

तव जंगली बाघ ने कहा, "अब तो तुम जान गये कि तुममें और मुझमें कोई भेद नहीं है। आओ और मेरे साथ वन में चलो।"

हम सोचते रहे हैं कि हम शरीर हैं, जो देश-काल की परिधि में सीमित है। किन्तु हम यह शरीर नहीं हैं। हम इस शरीर में सर्वशक्तिमान् आत्मा हैं।

अध्याय तेरह : सार - हमारा शरीर एक लघु विश्व की भाँति है। यह पाँच मूल तत्त्वों से बना है और आत्मा से शक्ति पाता है। हर सृष्टि के पीछे एक सृष्टा या शक्ति का होना अनिवार्य है। हम उस शक्ति को भिन्न-भिन्न नामों से पुकारते हैं जैसे कृष्ण, शिव, माता, पिता, ईश्वर, अल्लाह, गॉड, जवोहा आदि। परमात्मा का वर्णन मानवीय मस्तिष्क द्वारा नहीं किया जा सकता, न मानव-मस्तिष्क से परमात्मा को जाना या समझा जा सकता है। सृष्टा स्वयं सृष्टि वन गया है, वैसे ही जैसे कपास धागा, कपड़ा और वस्त्र वन गई है।

अध्याय चौदह

प्रकृति के तीन गुण

जय : दादी माँ, कभी-कभी तो मुझे मुझे बहुत आलस्य आता है और कभी मैं बहुत सक्रिय हो जाता हूँ। ऐसा क्यों है?

दादी माँ : हम सभी कुछ चीज़ों को करने के लिए विभिन्न अवस्थाओं से गुज़रते हैं। ये अवस्थाएँ अथवा गुण तीन प्रकार के हैं। सत्त्व गुण - जो अच्छी अवस्था है, रजस गुण - तीव्र कामना की अवस्था और तमस - अज्ञान की अवस्था। हम इन तीनों गुणों के प्रभाव में आते रहते हैं। कभी-कभी एक गुण दूसरे दो गुणों से अधिक शक्तिशाली होता है।

सत्त्व गुण तुम्हें शान्त और सुखी बनाता है। इस अवस्था में तुम धर्म-शास्त्रों का अध्ययन करोगे, किसी को हानि नहीं पहुँचाओगे, दु:ख नहीं पहुँचाओगे और ईमानदारी से काम करोगे। जब तुम रजोगुण के प्रभाव में होते हो, तो धन और सत्ता के लोभी बन जाते हो। तुम भौतिक सुखों को भोगने के लिए परिश्रम करोगे और अपनी स्वार्थपूर्ण कामनाओं की पूर्ति के लिए सब कुछ करोगे। किन्तु जब तुम पर तमस गुण का प्रभाव होता है, तो तुम अच्छे-बुरे कर्म में अन्तर नहीं कर सकते और तुम पाप भरे अवांछनीय कर्म करोगे। तुम आलसी और लापरवाह बन जाते हो, तुममें विवेक का अभाव रहता है और आध्यात्मिक ज्ञान में कोई रुचि नहीं रहती (गीता **14.05-09**)

जय : क्या प्रकृति के ये तीन गुण हमें अपने नियंत्रण में रखते हैं, दादी माँ? या हमारा अपने कर्मों पर नियंत्रण रहता है।

दादी माँ : वास्तव में, यही तीन गुण सब कर्मों के कर्त्ता हैं (गीता **3.27**)। जब हम सत्त्व गुण के प्रभाव में होते हैं, तो हम अच्छे और सही कर्म करते हैं। रजस गुण के प्रभाव में हम स्वार्थ पूर्ण कर्म करते हैं और तमस गुण के प्रभाव में बुरे कर्म करते हैं और आलसी हो जाते हैं (गीता **14.11-13**)। निर्वाण या मोक्ष पाने के लिए हमें तीनों गुणों से ऊपर उठना पड़ेगा। (गीता **14. 20**)

जय : जब हम इन तीन गुणों से ऊपर उठ जाते हैं, तो हम कैसे होते हैं?

दादी माँ : जब हम इन तीन गुणों से ऊपर उठ जाते हैं, तो हमें दु:ख-सुख प्रभावित नहीं करते, न ही सफलता और असफलता और हम सभी को अपने समान समझते हैं। इस प्रकार का व्यक्ति परमात्मा को छोड़कर और किसी पर निर्भर नहीं रहता।

जय : इन तीन गुणों से ऊपर उठना तो बहुत कठिन होगा। मैं इन तीन गुणों से ऊपर कैसे उठ सकता हूँ, दादी माँ?

दादी माँ : इन तीन गुणों से ऊपर उठना बहुत आसान नहीं है। किन्तु कुछ प्रयत्न करने पर ऐसा करना सम्भव है। यदि तुम तमस गुण के प्रभाव में हो, तो तुम्हें आलस्य छोड़ना होगा, जो तुम्हें करना है, उसे टालना बन्द करना होगा और दूसरों की सहायता करना शुरु करना होगा। यदि तुम रजस गुण के प्रभाव में हो, तो तुम्हें स्वार्थ भाव का, लोभ का त्याग करना होगा और दूसरों की सहायता करनी होगी। ऐसा करने से तुम सत्त्व गुण के प्रभाव में आ जाओगे। सत्त्व गुण को प्राप्त कर तुम प्रभु की भक्ति से तीन गुणों से ऊपर उठ सकोगे। भगवान् कृष्ण ने कहा है, "जो मेरी सेवा प्रेम और भक्ति से करता है, वह तीन गुणों से ऊपर उठ जाता है और ब्रह्म-ज्ञान के योग्य हो जाता है। (गीता **14.26**)

तीन गुणों के विषय में एक कथा इस प्रकार है :

18. राह के तीन लुटेरे

एक बार एक आदमी एक वन से होकर जा रहा था। तीन लुटेरों ने उस पर आक्रमण करके उसे लूट लिया।

लूटने पर उन लुटेरों में से एक ने कहा, "इस आदमी को जीवित रखने से क्या लाभ है?"

लुटेरे ने उस आदमी को मारने के लिए अपनी तलवार उठाई ही थी कि इतने में दूसरे लुटेरे ने उसे रोक दिया और कहा, "इसे मारने से भी क्या लाभ है? इसे पेड़ से बाँधकर यहीं छोड़ दो।"

लुटेरे उसे पेड़ से बाँधकर चलते बने।

कुछ देर में तीसरा लुटेरा वापिस आया। उसने आदमी से कहा, "मुझे खेद है। तुम्हें कष्ट तो नहीं पहुँचा? मैं तुम्हें खोल देता हूँ।"

आदमी को आज़ाद करके लुटेरे ने कहा, "आओ मेरे साथ चलो। मैं तुम्हें जन-मार्ग तक पहुँचा देता हूँ।"

काफ़ी देर चलकर वे सड़क पर पहुँचे।

तब उस आदमी ने कहा, "श्रीमन्, आप मेरे प्रति बहुत भले रहे हो। मेरे साथ मेरे घर चलो।"

"नहीं भाई, नहीं," लुटेरे ने उत्तर दिया। "मैं वहाँ नहीं जाऊँगा। पुलिस को पता लग जायेगा।"

वन यह संसार है। तीन लुटेरे तीन गुण हैं : सत्त्व, रजस् और तमस्। ये ही हैं, जो हमें हमारे आत्म-ज्ञान से वंचित करते हैं, लूटते हैं। आलस्य हमें नष्ट करना चाहता है। कामना हमें संसार से बाँध देती है। सत्त्व हमें काम और आलस्य के बंधन से मुक्त करता है। सत्त्व गुण के संरक्षण में हम क्रोध, काम, लोभ और आलस्य से मुक्ति पाते हैं। वह हमें संसार के बन्धन से भी राहत दिलाता है, बंधन को ढीला करता है। किन्तु सत्त्व भी एक लुटेरा है। यह हमें परमात्मा का शुद्ध ज्ञान नहीं दे सकता। यह

हमें केवल परमात्मा के परमधाम का मार्ग दिखा सकता है। हमें तीन गुणों से ऊपर उठकर प्रभु के प्रति प्रेम बढ़ाना होगा।

अध्याय चौदह : सार - प्रकृति माँ हमारे माध्यम से अपने काम कराने के लिए हमें तीन गुणों में बाँध देती है, रख देती है। वास्तव में तो सारा कर्म प्रकृति के इन तीन गुणों द्वारा ही किया जाता है। हम कर्त्ता नहीं हैं, किन्तु हम अपने कर्मो के प्रति उत्तरदायी हैं क्योंकि हमें मस्तिष्क मिला है और अच्छे-बुरे कर्मो का निर्णय करने और चुनने के लिए स्वतंत्र इच्छा-शक्ति मिली है। तुम सच्चे प्रयत्न और परमात्मा की भक्ति व उनकी कृपा से तीन गुणों के प्रभाव से बच सकते हो।

अध्याय पन्द्रह

परम पुरुष (पुरुषोत्तम)

जय : दादी माँ, मैं परमात्मा, आत्मा, दिव्यात्मा और जीव के अन्तर के बारे में बहुत भ्रमित हूँ। क्या आप मुझे फिर से समझायेंगी?

दादी माँ : ज़रूर जय, ये शब्द हैं, जिनका अर्थ तुम्हें भली-भाँति समझ लेना चाहिये।

परमात्मा को परम पुरुष, परमजीव, पिता, माता, ईश्वर, अल्लाह, परिपूर्ण, परमसत्य और अनेक नामों से भी पुकारा जाता है। वही पर ब्रह्म, परमात्मा, परम शिव और कृष्ण है। परमात्मा ही सब चीज़ों का स्रोत अथवा मूल है। परमात्मा से ऊपर कुछ भी नहीं है।

ब्रह्म अथवा आत्मा परमात्मा का ही एक अंश है। परमात्मा जिसका विस्तार यह समस्त विश्व है और समस्त विश्व जिससे पोषित है।

दिव्यात्माएँ - देवी-देवता, जैसे ब्रह्मा, विष्णु, शंकर तथा अन्य बहुत - ब्रह्म का ही विस्तार हैं।

जीव/ जीवात्माएँ - जैसे हम सब प्राणी - दिव्यात्माओं का विस्तार हैं।

परमात्मा और ब्रह्म अपना रूप नहीं बदलते हैं और वे अमर हैं, शाश्वत हैं (सदा रहने वाले हैं)। दिव्यात्माओं की उत्पत्ति ब्रह्म से होती है और उनका जीवन-काल बहुत लम्बा है, जबकि जीवों का जीवन-काल बहुत सीमित है।

यदि तुम सृष्टि की तुलना एक पेड़ से करो, तो परमप्रभु कृष्ण (परमात्मा) पेड़ की जड़ हैं, मूल हैं। आत्मा अथवा ब्रह्म/ ब्रह्मन् पेड़ का तना हैं। विश्व उस पेड़ की शाखाएँ हैं, पावन धर्म-ग्रन्थ - वेद, उपनिषद, गीता, धम्मपद, टोराह, बाइबिल, कुरआन आदि उसकी पत्तियाँ हैं और जीव - हम जीवित प्राणी - उस पेड़ के फल-फूल। देखा तुमने कि कैसे हर चीज़ परमात्मा से जुड़ी हुई है और उन्हीं का एक अंश है।

जय : और नक्षत्र, सूर्य, चन्द्रमा व तारे?

दादी माँ : समस्त संसार, जो दिखाई देता है, सूर्य, चन्द्रमा, पृथिवी, अन्य नक्षत्र और अन्तरिक्ष ब्रह्मा की सृष्टि हैं, भगवान् विष्णु द्वारा पालित-पोषित हैं और शिव या शंकर द्वारा उनका संहार किया जाता है, विनाश किया जाता है। याद रखो, ब्रह्मा, विष्णु और शंकर ब्रह्म की शक्ति का एक अंश हैं। सूर्य की प्रकाश-शक्ति भी ब्रह्म से आती है और ब्रह्म परमात्मा का एक अंश है, भगवान् कृष्ण का। ऋषि-मुनि हमें बताते हैं कि सब वस्तुएँ भगवान् कृष्ण/ परमात्मा के दूसरे रूप को छोड़कर कुछ भी नहीं हैं। कृष्ण ही सब चीज़ों के भीतर और बाहर हैं। वास्तव में वे ही हर चीज़ का रूप धारण करते हैं। एक ही सब बनता है। जब आवश्यकता होती है, तो वे ही पृथिवी पर धर्म की प्रस्थापना करने के लिए मनुष्य रूप में अवतरित होते हैं। (गीता 4.07-08)

लगभग 5,100 वर्ष पहले परमात्मा ने किस प्रकार कृष्ण के रूप में अवतार लिया, उसकी कथा इस प्रकार है :

19. बालकृष्ण की कथा

बालक कृष्ण का बलराम नाम का एक सौतेला बड़ा भाई था। वे दोनों साथ-साथ गोकुल गाँव में खेलते थे। कृष्ण की जन्मदायिनी माँ का नाम देवकी था। उसके पिता का नाम वसुदेव था। इसलिए कृष्ण को वासुदेव भी कहा जाता है। कृष्ण ने अपने बचपन के वर्ष दत्तक माता यशोदा की देखरेख में बिताये। बलराम और कृष्ण दोनों ही गाँव की गोपियों को प्रिय थे। उनकी माताएँ यशोदा और रोहिणी (बलराम की माँ) उन्हें गर्व सहित प्यार करती थीं और उन्हें भव्य रंगों के वस्त्राभूषण पहनाती थीं। कृष्ण को पीले वस्त्रों में और उसके बालों में मोर मुकुट पहनाकर सजाती थीं और बलराम को नीले वर्ण में। दोनों बालक जगह-जगह जाते और जहाँ जाते, वहीं मित्र बना लेते। अधिकांश समय वे किसी न किसी मुसीबत में फँस जाते।

एक दिन वे दूसरे गाँव के कुछ बच्चों के साथ खेल रहे थे। धरती खोदकर, माटी की रोटियाँ बनाकर, गंदे होकर। कुछ देर के बाद बड़े लड़कों में से एक माँ यशोदा के पास भागा-भागा आया और उसने कहा, “कृष्ण बहुत बुरा काम कर रहा है। वह माटी खा रहा है। यशोदा को अपने छोटे बालक पर गुस्सा आया। उसे और शिकायतें भी सुनने को मिल रही थीं गाँव वालों से कि कृष्ण उनके घरों से मक्खन चुराता रहा है।

वह अपने घर से बाहर निकली। उसने क्रोध में भरकर कृष्ण से पूछा, “कृष्ण, क्या तूने मिट्टी खाई है? मैंने तुम्हें कितनी बार मुँह में चीज़ें न डालने को कहा है।”

कृष्ण नहीं चाहता था कि उसे दण्ड मिले। इसलिए उसने यशोदा के साथ एक चालाकी की। उसने अपना मुँह पूरी तरह खोलकर कहा, "देखो माँ, मैं कुछ भी नहीं खा रहा था। ये लड़के तो बस मुझे संकट में डालने के लिए झूठ बोल रहे हैं।"

यशोदा ने कृष्ण के मुँह में भीतर देखा। वहाँ नन्हे बालक के मुँह में उसने सारा विश्व देखा - पृथिवी और नक्षत्र, विशाल शून्य-स्थल, सारा सौर मण्डल और आकाशगंगा, पर्वत, सागर, सूर्य व चन्द्रमा। सभी कुछ कृष्ण के मुँह में था। उसने जान लिया कि कृष्ण तो भगवान् विष्णु का अवतार है। वह उसके पैरों में गिरने को हुई - पूजा करने के लिए।

किन्तु कृष्ण नहीं चाहता था कि वह उसकी पूजा करे। वह तो बस यही चाहता था कि यशोदा उसे प्यार करे, वैसे ही जैसे माँ अपने बच्चों से करती हैं। दानवों से लड़ने के लिए वह किसी भी रूप में धरती पर अवतार ले सकता था किन्तु उसने तो ऐसे माँ-बाप के छोटे बालक के रूप में आना पसन्द किया जिन्होंने भगवान् को अपने बालक के रूप में पाने के लिए घोर तपस्या की थी। बालक कृष्ण ने अनुभव किया कि उसकी चालाकी बहुत बड़ी गलती थी।

तुरन्त ही उसने यशोदा को अपनी माया की शक्ति में बाँध लिया। अगले ही क्षण यशोदा कृष्ण को - अपने बेटे को सदा की भाँति गोद में लिये हुए थी। उसे विल्कुल भी याद नहीं रहा कि उसने क्षण भर पहले कृष्ण के मुँह में क्या देखा था।

जब तुम्हें समय मिले , तो तुम्हें ग्रामीणवासियों के साथ कृष्ण के मायावी खेलों से भरे साहसी कामों की दिलचस्प कथाओं को पढ़ना चाहिये।

समय-समय पर भगवान् हमें शिक्षा देने के लिए शिक्षक या सन्त के रूप में भी आते हैं। ऐसे ही एक सन्त की कथा सुनो।

20 . श्री रामकृष्ण की कथा

भगवान् रामकृष्ण के रूप में इस पृथिवी पर 18 फरवरी 1836 में पश्चिमी बंगाल राज्य के कमरपुकुर गाँव में अवतरित हुए। अधिकांश कथाएँ जो मैंने तुम्हें सुनाई हैं, वे उनकी पुस्तक **"श्री रामकृष्ण की कहानियाँ और दृष्टान्त कथाएँ"** से हैं। स्वामी विवेकानन्द उनके सबसे प्रसिद्ध शिष्यों में थे। स्वामी विवेकानन्द 1893 में अमेरिका में आने वाले पहले हिन्दू सन्त थे। उन्होंने न्यूयॉर्क में वेदान्त सोसायटी की स्थापना की। रामकृष्ण बहुत सादा जीवन जीते थे। वे अपने भोजन और दैनिक जीवन की अन्य दैनिक आवश्यकताओं के लिए भगवान् पर निर्भर रहते थे। वे पैसे स्वीकार नहीं करते थे। उनकी शादी माँ शारदा से हुई । वे शारदा माँ के साथ अपनी माँ जैसा व्यवहार करते थे। उनके कोई बच्चा न था। शारदा माँ अपने शिष्यों से कहा करती थीं, "यदि तुम मन की शान्ति चाहते हो, तो दूसरों के दोषों को मत देखो, अपने दोषों को देखो। दुनिया में कोई भी पराया नहीं है, सारा संसार तुम्हारा अपना ही है। शारदा माँ अपने शिष्यों को विरोधी यौन के व्यक्ति के अति समीप न होने की चेतावनी देती थीं, भले ही स्व्यं भगवान् भी इस रूप में सामने आये। रामकृष्ण माँ काली की अपनी इष्टदेवी के रूप में कलकत्ते के समीप दक्षिणेश्वर में स्थित मंदिर में उपासना करते थे। वह मंदिर आज भी वहाँ विद्यमान है।

अध्याय पन्द्रह : सार - सृष्टि परिवर्तनशील है, वह सदा रहने वाली नहीं है। इसका जीवन-काल सीमित है। ब्रह्म या आत्मा कभी नहीं बदलते। वह शाश्वत है। वह सब कारणों का कारण है। कृष्ण को परब्रह्म या परमात्मा कहा जाता है। वह भी पूर्ण है क्योंकि उसका कोई उद्‌गम नहीं है। वह ब्रह्म का स्रोत है। विश्व की सभी चीज़ें ब्रह्म से आती हैं। समस्त दिखाई देने वाला विश्व और इसके जीव ब्रह्मा की सृष्टि हैं। वही सृष्टा-शक्ति हैं। वह विष्णु द्वारा पोषित हैं, जो पोषण-शक्ति हैं और शंकर द्वारा उसका संहार होता है।

अध्याय सोलह
दैवी और आसुरी गुण

जय : मैं अपनी कक्षा में भिन्न-भिन्न प्रकार के छात्रों से मिलता हूँ। दादी माँ, विश्व में लोगों के कितने वर्ग हैं?

दादी माँ : सामान्यत: विश्व में लोगों की केवल दो ही जातियाँ हैं - अच्छी और बुरी (गीता 16.06)। अधिकांश लोगों में अच्छे और बुरे दोनों प्रकार के गुण होते हैं। यदि तुममें अच्छे गुण अधिक हैं तो तुम्हें अच्छा आदमी कहा जाता है और यदि तुममें बुरे गुणों की अधिक मात्रा है तो तुम्हें बुरा आदमी कहा जायेगा।

जय : यदि मैं अच्छा आदमी होना चाहूँ तो मुझमें क्या गुण होने चाहिएँ?

दादी माँ : तुम्हें ईमानदार, अहिंसक, सत्यवादी, अक्रोधी, शान्त, दुर्वचन-हीन, करुण, लोभ-हीन, सज्जन, क्षमाशील और विनम्र होना चाहिये। इन गुणों को दैवी गुण भी कहा गया है क्योंकि वे हमें भगवान् की ओर ले जाते हैं।

जय : मुझे कौन सी आदतों से बचना चाहिये?

दादी माँ : पाखण्ड, असत्य बोलना, घमण्ड, दम्भ, ईर्ष्या, स्वार्थ, क्रोध, लोभ, कठोरता, कृतघ्नता और हिंसा - ये दुर्गुण हैं क्योंकि ये हमें भगवान् से दूर ले जाते हैं। दुर्गुण हमें बुरी चीज़ों की ओर भी ले जाते हैं और हमें कठिनाइयों में डालते हैं। जिनमें

ये दुर्गुण हैं, उन लोगों के मित्र मत बनो क्योंकि वे नहीं जानते कि उन्हें क्या करना है और क्या नहीं करना है। जिन्होंने तुम्हारी सहायता की है, उनके प्रति सदा कृतज्ञ होओ। कृतघ्नता एक बड़ा पाप है जिसका कोई प्रायश्चि नहीं।

काम, क्रोध और लोभ बहुत विनाशकारी हैं। भगवान् इन्हें नरक के तीन द्वार कहते हैं। (गीता 16.21)

लोभ किस प्रकार शोक की ओर ले जाता है, इस विषय में एक कथा इस प्रकार है :

21 . कुत्ता और हड्डी

एक दिन किसी कुत्ते को एक हड्डी मिल गई। उसने उसे उठाकर मुँह में रख लिया और उसे चवाने के लिए किसी एकान्त जगह में चला गया। वह वहाँ कुछ समय बैठकर हड्डी चवाता रहा। फिर उसे प्यास लगी। वह मुँह में हड्डी लेकर झरने से पानी पीने के लिए लकड़ी के एक छोटे से पुल पर चला गया।

जब उसने वहाँ पानी में अपनी परछाई देखी तो उसने सोचा वहाँ नदी में हड्डी लिए दूसरा कुत्ता है। उसे लोभ हो आया और उसने दूसरी हड्डी भी लेनी चाही। उसने दूसरे कुत्ते से दूसरी हड्डी लेने के लिए भौंकने को अपना मुँह खोला, उसके मुँह से उसकी हड्डी गिरकर पानी में जा गिरी। तब कुत्ते को अपनी ग़लती का अहसास हुआ पर तब तक बहुत देर हो चुकी थी।

लोभ पर विजय पाई जा सकती है, उन चीज़ों पर संतोष कर, जो व्यक्ति के पास हैं। संतुष्ट व्यक्ति बहुत सुखी व्यक्ति है। लोभी व्यक्ति को जीवन में कभी सुख नहीं मिल सकता।

जय : मैं कैसे जान पाऊँगा कि मुझे क्या करना चाहिये और क्या नहीं करना चाहिये?

दादी माँ : अपने शास्त्र - धर्म-ग्रन्थों का अनुसरण करो, जय। हमारे पावन धर्म-ग्रन्थों में ऋषियों और सन्तों ने हमें बताया है कि हम क्या करें और क्या न करें। भगवान् में आस्था रखो और अपने माता-पिता तथा गुरूजनों की बात सुनो।

हमें जितनी सम्भव हो सकें, उतनी अच्छी आदतें डालनी चाहिएँ। किन्तु ऐसा कोई नहीं जिसमें केवल अच्छी आदतें ही हों और कोई भी बुरी आदत न हो। परमप्रभु सामान्यत: एक ही जगह अच्छी और बुरी दोनों तरह की आदतें रख देता है।

इस प्रकार के सत्य को रानी द्रौपदी ने अपने अनुभव से कैसे खोजा, इसके बारे में एक कथा इस प्रकार है

22 . रानी द्रौपदी की कथा

द्रौपदी पाँचों पाँडवों की साझी पत्नी थी। वह अपने पूर्व जन्म में एक ऋषि की बेटी थी। वह बहुत सुन्दर और गुणवती थी किन्तु अपने पूर्व जन्म में अपने पिछले कर्म के कारण, उसका विवाह नहीं हो सका था। इससे वह बहुत दु:खी हुई इसलिए उसने भगवान् शिव को प्रसन्न करने के लिए तपस्या करनी शुरू कर दी। लम्बी और कठोर तपस्या से उसने भगवान् शिव को प्रसन्न कर दिया। भगवान् शिव ने मनोवांछित एक वरदान माँगने को कहा। उसने एक ऐसे पति का वरदान माँगा जो अत्यन्त धार्मिक, वलवान्, महा योद्धा, सुन्दर और सज्जन हो। भगवान् शिव ने उसे मनोवांछित वरदान दे दिया।

अपने अगले जन्म में द्रौपदी का विवाह पाँच भाइयों के साथ हुआ किन्तु वह इस विचित्र स्थिति से प्रसन्न न थी। द्रौपदी भगवान् कृष्ण की महान् भक्त थी - जो सब जीवों का भूत, वर्तमान और भविष्य जानते हैं। उन्हें उसके दु:ख का पता था। उन्होंने उसे समझाया कि उसने पिछले जन्म में क्या माँगा था। भगवान् कृष्ण ने कहा कि वे सब गुण जो वह अपने पति में चाहती थी, किसी एक व्यक्ति में मिल पाने असम्भव थे। इसीलिए उसका विवाह इस जीवन में पाँच पतियों के साथ हुआ जिनमें सबके गुणों को मिलाकर वे सब गुण थे।

स्वयं भगवान् कृष्ण से यह विश्लेषण सुनकर वह, उसके पिता-माता और उसके पाँचों पतियों ने सहर्ष अपना भाग्य स्वीकार किया और वे आनन्द से रहे।

इस कथा से यह शिक्षा मिलती है कि किसी भी पति या पत्नी में सब अच्छे या बुरे गुण नहीं मिल सकते इसलिए व्यक्ति को भाग्य ने जो दिया है, उसके साथ रहना सीखना चाहिये। कोई भी पूर्ण पति या पत्नी नहीं क्योंकि किसी में भी केवल अच्छे गुण ही नहीं होते और कोई भी बुरे गुणों से रहित नहीं है।

अध्याय सोलह : सार - सामान्यत: दो ही प्रकार के मानव हैं - अच्छे या दैवी और बुरे या आसुरी। अधिकांश लोगों में अच्छे-बुरे दोनों गुण होते हैं। आध्यात्मिक विकास के लिए बुरी आदतों से छुटकारा पाना और अच्छी आदतों का डालना आवश्यक है।

अध्याय सत्रह

तीन प्रकार की श्रद्धा

जय : दादी माँ, मैं कैसे जानूँगा कि मुझे किस प्रकार का भोजन करना चाहिये?

दादी माँ : तीन प्रकार के भोजन हैं, जय। (गीता 17.07-10) भोजन, जो दीर्घ आयु, गुण, शक्ति, स्वास्थ्य, प्रसन्नता, आनन्द देते हैं, वे रस-भरे, तरल, सार भरे और पौष्टिक होते हैं। ऐसे स्वाथ्यवर्द्धक भोजन सर्वश्रेष्ठ हैं। वे सात्त्विक भोजन कहलाते हैं।

भोजन, जो कड़वे, कसैले, नमकीन, गर्म, तैलपूर्ण और जलन पैदा करने वाले हैं, राजसिक कहलाते हैं। ऐसे तत्त्वहीन भोजन स्वास्थ्यवर्द्धक नहीं हैं, वे बीमारी पैदा करते हैं। उनसे बचना चाहिये।

भोजन, जो ठीक से पकाए नहीं गये हैं, सड़ गये हैं, स्वादहीन हैं, ख़राब हो गये हैं, जल गये हैं, बासी हैं या माँस-मदिरा जैसे अपावन हैं, तामसिक कहलाते हैं। ऐसे भोजन नहीं करने चाहिएँ।

जय : मुझे दूसरों से कैसे बोलना चाहिये?

दादी माँ : तुम्हें कभी झूठ नहीं बोलना चाहिये। तुम्हारे शब्द कठोर, कड़वे, बुरे या अपमानजनक नहीं होने चाहिएँ। वे मीठे, लाभकारी और सच्चे होने चाहिएँ। (गीता 17.15) जो विनम्रता से बोलता है, वह सबका हृदय जीत लेता है और सबका प्रिय होता है। विद्वान् व्यक्ति को सच बोलना चाहिये, यदि वह लाभकारी है और यदि कठोर है तो मौन रहना चाहिये। ज़रूरतमन्द की सहायता करना सार्वभौमिक शिक्षा है।

जय : मुझे दूसरों की सहायता कैसे करनी चाहिये?

दादी माँ : हमारा कर्त्तव्य है कि हम उनकी सहायता करें, जो हमसे कम भाग्यशाली हैं और स्वयं की सहायता नहीं कर सकते। जिसको भी ज़रूरत हो, उसकी मदद करो लेकिन बदले में किसी चीज़ की आशा न करो। दान देना न केवल सर्वश्रेष्ठ कर्म है, वरन् एकमात्र सदुपयोग है धन का। हमें अच्छे उद्देश्यों की पूर्ति में सहायता करनी चाहिये। जो दुनिया का है, वह उसे लौटा दो। किन्तु हमारी ज़िम्मेदारियाँ भी हैं। दान में दिया हुआ धन वैध उपायों से कमाया हुआ होना चाहिये और हमें यह बात पक्के तौर से जान लेनी चाहिये कि दान लेने वाला व्यक्ति दान का उपयोग बुरे कामों के लिए नहीं करेगा। (गीता 17.20-22)

जय : यदि हम निष्ठा से प्रार्थना करें, तो क्या भगवान् हमें वह वस्तु देंगे, जो हम चाहते हैं?

दादी माँ : भगवान् में पूर्ण आस्था काम (पूरा) कराती है। आस्था से कुछ भी सम्भव हो सकता है। आस्था से अलौकिक चमत्कार होता है। किसी भी काम को शुरु करने से पहले हममें उसके प्रति आस्था होनी चाहिये। गीता में कहा गया है कि यदि हम ध्येय का सदा ध्यान करें और विश्वास के साथ भगवान् से प्रार्थना करें तो हम जो भी होना चाहेंगे, वह बन सकेंगे। (गीता 17.03) सदा सोचो जो तुम होना चाहते हो और तुम्हारा सपना पूरा हो सकता है।

एक कहानी है जो एक कौवे के बारे में है, जिसमें पूरा विश्वास था।

23 . प्यासा कौआ

भयंकर गर्मी का दिन था। एक कौआ बहुत प्यासा था। पानी की खोज में वह जगह-जगह उड़ता फिरा। उसे कहीं भी पानी न मिला। तालाव, नदी, झील - सब सूख गये थे। कुएँ में पानी बहुत गहरा था। वह उड़ता रहा, उड़ता रहा। वह थक रहा था तथा और अधिक प्यासा हो रहा था। किन्तु उसने पानी की खोज जारी रखी। उसने हिम्मत न हारी।

अन्त में उसने सोचा कि मृत्यु निकट ही है। उसने भगवान् का ध्यान किया और पानी के लिए प्रार्थना करनी शुरू की। तभी उसने एक घर के पास में पानी का एक घड़ा देखा। उसे देखकर वह बहुत खुश हुआ क्योंकि उसने सोचा घड़े में पानी होना चाहिये। वह घड़े पर बैठ गया और उसमें झाँककर देखा। उसकी कुंठा की सीमा न रही, जब उसने पाया कि पानी घड़े की तली में था। वह पानी देख सकता था पर उसकी चोंच पानी तक तक नहीं पहुँच सकती थी। वह बहुत दुःखी हुआ और सोचने लगा कि किस प्रकार वह पानी तक पहुँच सकता था। अचानक उसके मस्तिष्क में एक विचार आया घड़े के पास ही पत्थरों के टुकड़े पड़े थे। उसने धरती पर पड़े पत्थरों के टुकड़ों को एक-एक करके उठाया और घड़े में डालना शुरू कर दिया। पानी ऊपर उठता गया। जल्द ही कौआ आसानी से पानी तक पहुँच गया। उसने पानी पिया, भगवान् को धन्यवाद दिया और प्रसन्न होकर वह दूर उड़ गया।

इसीलिए कहा गया है, “जहाँ चाह है, वहीं राह है।” कौवे ने वही किया जो हम सबको करना चाहिये। उसने हार नहीं मानी। उसे विश्वास था कि उसकी प्रार्थना ज़रूर सुनी जायेगी।

और एक दूसरी अच्छी कहानी है :

24 . खरगोश और कछुआ

कछुआ हमेशा बहुत धीरे चलता है। ऐसे ही एक कछुए का खरगोश मित्र उसकी धीमी चाल पर हँसता था। एक दिन कछुए को अपना अपमान और सहन न हुआ और उसने खरगोश को अपने साथ दौड़ लगाने के लिए ललकारा। जंगल के सारे जानवर उसके इस विचार पर हँसे क्योंकि दौड़ तो प्राय: बराबर वाले जीवों में होती है। एक हिरन ने निर्णायक होने के लिए अपनी सेवाएँ अर्पित कीं।

दौड़ शुरू हुई। खरगोश तेजी से दौड़ा। जल्द ही वह कछुए से बहुत आगे निकल गया। चूँकि खरगोश विजय-स्तम्भ के पास व और पास आ रहा था, उसे अपनी जीत पर पूरा विश्वास था। उसने पीछे की ओर धीरे-धीरे घिसटते कछुए को देखा, जो बहुत पीछे रह गया था।

खरगोश को अपनी विजय का इतना विश्वास था कि उसने सोचा, "मैं पेड़ के नीचे बैठकर कछुए का इन्तज़ार करूँगा। जब वह यहाँ आ जायेगा, तो मैं तेज भागकर उससे पहले समाप्ति-सीमा को पार कर लूँगा। ऐसा करने पर कछुए को क्रोध आयेगा और कछुए को अपमानित देखने से बड़ा मज़ा आयेगा।"

तब खरगोश एक पेड़ के नीचे बैठ गया। कछुआ अब भी बहुत पीछे था। ठंडी हवा धीरे-धीरे बह रही थी। कुछ देर बाद खरगोश की आँख लग गई। जब वह जागा तो उसने कछुए को समाप्ति-रेखा के पार देखा। खरगोश दौड़ में हार गया था। जंगल के सारे पशु खरगोश पर हँस रहे थे। उसने एक मूल्यवान् पाठ सीखा था।

"धीरे पर दृढ़ता से चलने वाला दौड़ जीतता है।" यदि तुम परिश्रम करो और दृढ़विश्वास रखो तो किसी भी काम में सफल हो सकते हो। जो तुम चाहते हो, उसके प्रति उत्साहित रहो और तुम्हें उसकी प्राप्ति होगी। हम अपने विचारों और कामनाओं की ही सृष्टि हैं। विचार हमारे भविष्य के निर्माता हैं। हम वही बन जाते हैं, जिसका हम सदा चिन्तन करते हैं। इसलिए कभी नकारात्मक विचार मन में न आने दो। अपने ध्येय की ओर बढ़ते रहो। आलस्य, उपेक्षा और देरी से तुम्हें कुछ नहीं मिलेगा। अपने हृदय में अपने सपने जगाये रखो, वे पूरे होंगे। भगवान् में विश्वास रखने और सफलता में दृढ़ निश्चय से सारी बाधाओं को दूर किया जा सकता है।किन्तु सफलता का फल दूसरों के साथ बाँटा जाना चाहिये, औरों के सपनों को पूरा करने में सहायता करो।

एक आदमी के बारे में यह कहानी है जिसने यह सीखा था कि भगवान् उसकी मदद करते हैं, जो स्वयं अपनी मदद करता है।

25 . आदमी, जिसने कभी हार न मानी

यव एक ऋषि का बेटा था। वह देवताओं के राजा इन्द्र का आशीर्वाद पाने के लिए भयंकर तपस्या कर रहा था। तपस्या से उसने अपने शरीर को घोर यातना दी। इससे इन्द्र की करुणा उसके प्रति जाग उठी। इन्द्र ने उसे दर्शन दिये और उससे पूछा, " तुम अपने शरीर को यातना क्यों दे रहे हो?"

यव ने उत्तर दिया, " मैं वेदों का महान् विद्वान् होना चाहता हूँ। किसी गुरु से वेदों का अध्ययन करने में बहुत समय लगता है। मैं उनके ज्ञान को सीधे प्राप्त करने के लिए तपस्या कर रहा हूँ। आप मुझे आशीर्वाद दीजिये।"

इन्द्र मुस्कुराये। उन्होंने कहा, " बेटे, तुम ग़लत मार्ग पर चल रहे हो। घर वापिस जाओ, किसी अच्छे गुरु को खोजो और उसके साथ वेदों का अध्ययन करो। तपस्या ज्ञान का मार्ग नहीं हैं, उसका मार्ग अध्ययन और केवल अध्ययन है।" ऐसा कहकर इन्द्र चले गये।

किन्तु यव ने हार न मानी। उसने अपना आध्यात्मिक अभ्यास, तपस्या और भी परिश्रम से जारी रखे। इन्द्र ने फिर उसे दर्शन दिये और पुन: चेतावनी दी। यव ने घोषणा की कि यदि उसकी प्रार्थना न सुनी गई, तो वह एक-एक करके अपने हाथ-पैरों को काटकर आग को समर्पित कर देगा। नहीं, वह कभी अपना मार्ग नहीं छोड़ेगा। उसने तपस्या जारी रखी। अपनी तपस्या के दौरान एक सुबह जब वह पावन नदी गंगा में स्नान करने गया, तो उसने देखा कि एक वृद्ध पुरुष मुट्ठियों में रेत भर-भर कर गंगा में डाल रहा था।

"वृद्ध पुरुष, आप ये क्या कर रहे हैं?" यव ने पूछा।

वृद्ध पुरुष ने उत्तर दिया, मैं नदी के आर पार एक पुल बनाने जा रहा हूँ ताकि लोग आसानी से गंगा पार कर सकें। देखते हो, अभी नदी पार करना कितना कठिन है। लाभदायक काम है, है न?

यव हँसा। उसने कहा, "कैसे मूर्ख हैं आप, आप सोचते हैं कि अपनी मुट्ठी भर रेत से आप इस महान् नदी के आर पार पुल बना देंगे। घर जाओ और कोई लाभदायक काम करो।"

वृद्ध पुरुष ने कहा, "क्या मेरा काम तुम्हारे काम से भी अधिक मूर्खता का है, जो तुम अध्ययन करके नहीं, तपस्या से वेदों का ज्ञान प्राप्त करना चाहते हो?"

अब यव को पता चल गया कि वृद्ध पुरुष और कोई नहीं, इन्द्र ही था। यव ने बहुत निष्ठा से इन्द्र से भिक्षा माँगी कि वे उसे व्यक्तिगत आशीर्वाद के रूप में वेदों के ज्ञान का वरदान दें।

इन्द्र ने उसे आशीर्वाद दिया और निम्न शब्दों के साथ सांत्वना भी, "मैं तुम्हें मनोवाञ्छित वरदान देता हूँ। जाओ और वेदों को पढ़ो। तुम अवश्य ही विद्वान् बनोगे।

यव ने वेदों का अध्ययन किया और वह वेदों का महान् विद्वान् बना।

सफलता का रहस्य है : हर समय उस वस्तु का चिन्तन करना, जिसकी तुम्हें चाह है और जब तक तुम्हें, जो तुम चाहते हो, वह मिल नहीं जाती, हिम्मत न हारो, प्रयत्न न छोड़ो।

देर से शुरू करने, आलस्य और लापरवाही जैसे नकारात्मक विचारों को अपने मार्ग में न आने दो।

किसी भी काम या अध्ययन को आरम्भ करने से पहले या समाप्त करने पर ब्रह्म के तीन नामों - ओम्, तत्, सत् का जाप करो।

जय : ओम्, तत्, सत् का क्या अर्थ है, दादी माँ?

दादी माँ : इसका अर्थ है : केवल कृष्ण, सर्वशक्तिमान् भगवान् ही विद्यमान हैं। किसी काम या अध्ययन के प्रारम्भ में ओम् का उच्चारण किया जाता है। ओम्, तत्, सत् या ओम् शान्तिः, शान्तिः, शान्तिः भी किसी काम के अन्त में कहा जाता है।

अध्याय सत्रह : सार - भोजन तीन प्रकार के हैं - सात्त्विक, राजसिक और तामसिक - वे हमारी कुशलता पर प्रभाव डालते हैं। सच बोलो किन्तु प्रिय बोलो। सुपात्र को दान दो और इस प्रकार दो कि उसका दुरुपयोग न हो। यदि तुम अपने ध्येय को ध्यान में रखकर परिश्रम करोगे, तो तुम वह बनने में सफल होगे, जो तुम बनना चाहते हो।

अध्याय अठारह

सन्यास द्वारा मोक्ष

जय : दादी माँ, मैं आपके द्वारा प्रयोग में लाये गये विभिन्न शब्दों के बारे में भ्रम में हूँ। कृपया मुझे स्पष्ट रूप से समझाइये कि सन्यास और कर्मयोग में क्या अन्तर है?

दादी माँ : कुछ लोग सोचते हैं कि संन्यास का अर्थ है परिवार, घर, सम्पत्ति को छोड़कर चले जाना और किसी गुफा, वन अथवा समाज से बाहर किसी दूसरे स्थान पर जाकर रहना। किन्तु भगवान् कृष्ण ने सन्यास की परिभाषा दी है : सब कर्म के पीछे स्वार्थपूर्ण कामना का त्याग। (गीता **6.01, 18.02**) कर्मयोग में व्यक्ति अपने कर्म के फल के भोग की स्वार्थपूर्ण कामना का त्याग करता है। इस प्रकार सन्यासी एक कर्मयोगी ही है, जो कोई भी कर्म अपने व्यक्तिगत लाभ के लिए नहीं करता है।

जय : क्या इसका यह अर्थ है कि मैं स्वयं ऐसा कुछ नहीं कर सकता, जो मुझे आनन्द दे।

दादी माँ : यह तो इस बात पर निर्भर करता है कि तुम्हारे मन में किस प्रकार का आनन्द है, (जिसके बारे में तुम सोचते हो) धूम्रपान, मद्यपान, जुआ, नशीली चीज़ों का सेवन आदि जैसे कर्म आरम्भ में आनन्द जैसे लगते हैं, किन्तु अन्त में वे निश्चित ही दुष्परिणाम वाले सिद्ध होते हैं। विष का स्वाद लेते समय शायद अच्छा लगे, पर उसका घातक परिणाम तुम्हें तभी ज्ञात होता है, जब बहुत देर हो चुकी होती है। इसके विपरीत ध्यान-योग, उपासना, ज़रूरतमंद की सहायता जैसे कर्म शुरू में कठिन और उबाऊ लगते हैं, पर अन्त में उनका परिणाम बहुत लाभदायक होता है। (गीता **5.22, 18.38**) पालन करने योग्य एक अच्छा नियम है ऐसे कामों को न करना, जो आरम्भ में सुखदायी लगते हैं, पर अन्त में हानिकारक प्रभाव का कारण बनते हैं।

जय : समाज में किस-किस प्रकार के काम उपलब्ध हैं, दादी माँ?

दादी माँ : प्राचीन वैदिक जीवन-पद्धति में मानवों के काम चार सार्वभौमिक श्रेणियों में श्रम-विभाजन पर आधारित भगवान् कृष्ण ने बताए हैं। (गीता **4.13, 18.41-44**) ये चार विभाजन हैं - ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र। वे व्यक्तियों की मानसिक, बौद्धिक और भौतिक योग्यताओं पर आधारित थे। व्यक्ति की योग्यता ही निर्णायक तत्त्व था - न कि जन्म या सामाजिक स्थिति जिसमें व्यक्ति जन्मा था - जो व्यक्ति को एक श्रेणी में रखता था। किन्तु गलती से इन वर्णों को भारत या अन्य देशों में आज की जाति व्यवस्था समझ लिया जाता है। जाति-व्यवस्था केवल जन्म पर आधारित है।

जिन लोगों की रुचि अध्ययन, अध्यापन, शिक्षा देने और लोगों का अध्यात्मिक तत्त्वों में मर्गदर्शन करने में थी, वे ब्राह्मण कहलाते थे। जो लोग देश की रक्षा कर सकते थे, कानून और व्यवस्था स्थापित कर सकते थे, अपराधों को रोक सकते थे और न्याय दे सकते थे, वे क्षत्रिय कहे जाते थे। जो लोग खेती, पशु-पालन, वाणिज्य, व्यापार, वित्त कार्यों और उद्योगों में विशेष योग्यता रखते थे, वैश्य नाम से जाने जाते थे। वे लोग जो सेवा और श्रम कार्यों में निपुण थे, शूद्र वर्ण में गिने गये।

लोग कुछ विशेष योग्यता के साथ पैदा होते हैं या प्रशिक्षण और प्रयास द्वारा उस योग्यता का विकास कर सकते हैं। सामाजिक स्तर विशेष वाले परिवार में जन्म लेना, वह ऊँचा हो या नीचा, व्यक्ति की योग्यता का निर्णायक नहीं होता।

चतुर्वर्ण-व्यवस्था का अर्थ था व्यक्ति की निपुणता और योग्यता के अनुसार उसके काम का निश्चय करना। दुर्भाग्यवश चतुर्वर्ण-विभाजन पतित होकर सैकड़ों रूढ़िग्रस्त जातियों में वँट गया जिससे महान् धर्म को भी हानि पहुँची। स्वामी विवेकानन्द की मान्यता है कि आधुनिक भारतीय जाति व्यवस्था हमारे महान् धर्म अथवा जीवन-पद्धति के मुख पर एक बड़ा धब्बा है। भारत से आये हमारे कुछ शिक्षित आप्रवासी भी अमेरिका में जाति के आधार पर संस्थाएँ वना रहे हैं।

जय : समाज में रहते हुए और काम करते हुए कोई भी व्यक्ति कैसे मोक्ष प्राप्त कर सकता है?

दादी माँ : जब कर्म भगवान् की सेवा के रूप में परिणामों के प्रति स्वार्थपूर्ण आसक्ति के बिना किया जाता है, तो वह उपासना हो जाता है। यदि तुम वह कर्म, जो तुम्हारे अनुकूल हैं, ईमानदारी से करते हो तो तुममें कर्म की लिप्तता नहीं होगी और तुम्हें भगवान् की प्राप्ति होगी।

किन्तु तुम यदि ऐसे काम में लगते हो, जो तुम्हारे लिए नहीं था, तो ऐसा कर्म तनाव पैदा करेगा और तुम्हें उसमें बहुत सफलता नहीं मिलेगी। यह बहुत महत्त्वपूर्ण है कि तुम अपनी प्रकृति के अनुकूल उचित कर्म की खोज करो। इसलिए तुम्हें उस काम को लेने का निर्णय लेने से पहले, जो तुम्हारे अनुकूल हो, अपने को जानना चाहिये। (गीता **18.47**) तब वह काम तुम्हारे लिए तनाव पैदा नहीं करेगा और रचनाधर्मिता की प्रेरणा देगा।

कोई भी कर्म पूर्णता लिए हुए नहीं है। हम काम में कोई न कोई दोष है। (गीता **18.48**) जीवन में अपना कर्त्तव्य (धर्म) करते हुए तुम्हें ऐसे दोषों की चिन्ता नहीं करनी चाहिये। भगवान् के प्रति भक्ति-भाव रखते हुए और आध्यात्मिक अभ्यास के द्वारा अपनी इन्द्रियों को नियंत्रण में रखते हुए अपने कर्त्तव्य (धर्म) का पालन करने से तुम्हें भगवान् की प्राप्ति होगी।

निम्न कथा दर्शाती है कि किस प्रकार निष्ठापूर्वक अपने कर्त्तव्य (धर्म) का पालन करने से व्यक्ति आत्म-ज्ञान प्राप्त कर सकता है।

26. मैं चिड़िया नहीं

कौशिक नाम के एक ऋषि ने अलौकिक दिव्य शक्ति प्राप्त कर ली थी। एक दिन वे ध्यान मुद्रा में एक पेड़ के नीचे बैठे थे। पेड़ की चोटी पर बैठी चिड़िया ने उनके सिर पर बींट कर दी। कौशिक ने उसकी ओर क्रोध से देखा और उनकी क्रुद्ध दृष्टि से तुरन्त चिड़िया की मृत्यु हो गई। ज़मीन पर मरी हुई चिड़िया को गिरा देखकर ऋषि को बड़ी वेदना हुई।

कुछ देर बाद सदा की भाँति वे अपने भोजन के लिए भिक्षा माँगने को निकले। वे एक घर के द्वार पर आकर खड़े हो गये। गृहस्वामिनी अपने पति को भोजन कराने में व्यस्त थी। वह शायद बाहर प्रतीक्षा करते हुए ऋषि के बारे में भूल गई थी। पति को भोजन कराके वह भोजन लेकर बाहर आई और बोली, "मुझे दु:ख है, मैंने आपको प्रतीक्षा कराई। मुझे क्षमा करें।"

किन्तु कौशिक ने क्रोध से जलते हुए कहा, "देवी जी, तुमने बहुत देर तक मुझसे प्रतीक्षा करवाई। यह ठीक नहीं है।"

"कृपया मुझे क्षमा कर दें," महिला ने कहा, "मैं अपने बीमार पति की सेवा में लगी थी। इसीलिए देर हो गई।"

कौशिक ने उत्तर दिया, "पति की सेवा करना तो बहुत अच्छा है, किन्तु तुम मुझे घमण्डी स्त्री लगती हो।"

स्त्री ने उत्तर दिया, "मैंने आपको प्रतीक्षा कराई क्योंकि मैं कर्त्तव्यभाव से अपने बीमार पति की सेवा कर रही थी। कृपया मुझसे नाराज़ न हों। फिर मैं कोई चिड़िया तो नहीं, जो आपके क्रोधपूर्ण विचारों से मर जाऊँगी। आपका क्रोध ऐसी स्त्री को कोई हानि नहीं पहुँचा सकता जिसने अपने आपको पति और परिवार की सेवा में समर्पित कर दिया हो।

कौशिक को बहुत आश्चर्य हुआ। वह सोचता रहा कि इस स्त्री को चिड़िया की घटना के बारे में कैसे पता चला।

स्त्री ने अपना कथन जारी रखा। "हे महात्मा, आपको कर्त्तव्य (धर्म) का रहस्य ज्ञात नहीं, न ही इस बात का ज्ञान है कि क्रोध मानव-मन में रहने वाला सबसे बड़ा शत्रु है। मिथिला प्रदेश में स्थित रामपुर नगर में जाकर व्याध राज से भक्तिपूर्वक अपने कर्त्तव्य (धर्म) पालन का रहस्य सीखिये।"

कौशिक उस गाँव में गये और व्याधराज नाम के व्यक्ति से मिले। उन्हें यह जानकर आश्चर्य हुआ कि वह एक कसाई की दुकान पर माँस बेच रहा था। कसाई अपने स्थान से उठा। उसने पूछा, "आदरणीय श्रीमन्, आप ठीक तो हैं न? मुझे पता है आप यहाँ क्यों आये हैं। आइये, घर चलें।"

व्याध कौशिक को अपने घर ले गया। कौशिक ने वहाँ एक सुखी परिवार देखा। उसे यह देखकर घोर आश्चर्य हुआ कि व्याध कितने प्यार और आदर से अपने माता-पिता की सेवा करता है। कौशिक ने उस कसाई से धर्म/कर्त्तव्य-पालन का पाठ सीखा। व्याधराज पशुओं का वध नहीं करता था। वह कभी माँस नहीं खाता था। वह तो पिता के अवकाश ग्रहण करने पर केवल परिवार का व्यापार चला रहा था।

इसके बाद कौशिक अपने घर लौट आये। वहाँ उन्होंने अपने माँ-बाप की सेवा करनी शुरू की अर्थात् उस धर्म का पालन करना जिसकी उन्होंने पहले उपेक्षा कर रखी थी।

इस कथा से हमें यही शिक्षा मिलती है कि तुम ईमान दारी से, जो भी कर्त्तव्य तुम्हें जीवन में मिला है, उसका पालन करते हुए आध्यात्मिक पूर्णता को प्राप्त कर सकते हो।वही भगवान् की सच्ची पूजा है। (गीता **18.46**)

भगवान् कृष्ण हम सबके भीतर निवास करते हैं और हमारे अपने कर्म की पूर्ति में हमारा मार्गदर्शन करते हैं। (गीता **18.61**) अपना पूरा मन लगाकर कर्म करो और प्रसन्नतापूर्वक प्रभु की इच्छा मानकर परिणाम स्वीकार करो। यही परमात्मा को समर्पित होना कहलाता है। (गीता **18.66**) आध्यात्मिक ज्ञान का दान सर्वश्रेष्ठ दान है क्योंकि आध्यात्मिक

ज्ञान का अभाव ही विश्व के सब दुष्कर्मों का कारण है। आध्यात्मिक ज्ञान का प्रसार करना भगवान् कृष्ण की उच्चतम भक्ति-निष्ठ सेवा है। (गीता **18.68-69**)

सदा रहने वाली शान्ति और सम्पत्ति तभी सम्भव है, जब तुम निष्ठापूर्वक अपने कर्त्तव्य का पालन करो और भगवान् कृष्ण द्वारा श्रीमद्भगवद्गीता में दिये गये आध्यात्मिक ज्ञान को ग्रहण करो। (गीता **18.78**)

अध्याय अठारह : सार - भगवान् कृष्ण ने कहा है कि कर्मयोगी और सन्यासी में कोई वास्तविक अन्तर नहीं है। कर्मयोगी कर्म फल के प्रति अपनी स्वार्थपूर्ण आसक्ति का त्याग करता है जबकि सन्यासी अपने किसी भी लाभ के लिए बिल्कुल कर्म नहीं करता। दो प्रकार के सुख हैं - लाभकारी और हानिकर। समाज में विभिन्न व्यक्तियों के लिए उनके अनुकूल भिन्न काम हैं। व्यक्ति को अपना कर्म बहुत समझदारी से चुनना चाहिये। समाज में रहते हुए भगवान् की प्राप्ति के लिए कर्त्तव्य, अनुशासन और भगवान् की भक्ति - इन तीनों का पालन करना साधन है।

ओम् तत् सत्